उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-02
शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड

2

विकास के आयाम

इकाई-5 शारीरिक विकास	5
इकाई-6 संज्ञानात्मक विकास	20
इकाई-7 संवेगात्मक विकास	30
इकाई-8 सामाजिक विकास	44

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 पी0 सी0 सक्सेना	पूर्व आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 रीना अग्रवाल	रीडर, शिक्षा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, जून 2009,

मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

MAED-02 शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड-1 शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि

इकाई-1 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व

इकाई-2 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ

इकाई-3 मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान

इकाई-4 वृद्धि एवं विकास

खण्ड-2 विकास के आयाम

इकाई-5 शारीरिक विकास

इकाई-6 संज्ञानात्मक विकास

इकाई-7 संवेगात्मक विकास

इकाई-8 सामाजिक विकास

खण्ड-3 शिक्षार्थी की विशेषताएँ

इकाई-9 भाषा विकास

इकाई-10 संप्रत्यात्मक विकास

इकाई-11 बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता

इकाई-12 व्यक्तित्व

खण्ड-4 अधिगम के पक्ष

इकाई-13 सीखना

इकाई-14 अभिप्रेरणा

इकाई-15 स्मरण, विस्मरण एवं चिन्तन

इकाई-16 विशिष्ट बालकों की शिक्षा

खण्ड परिचय-2 विकास के आयाम

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। विभिन्न माध्यम है। आयु-वर्ग में भाषा का विकास अलग-अलग होता है। एक नवजात शिशु मात्र कुछ ध्वनियां प्रकट करता है। जबकि एक युवा का भाषा पर अधिकार होता है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे भाषा का विकास उन्नत दिशा की ओर अग्रसर होने लगता है। भाषा विकास बहुत सारे कारक प्रभावित करते हैं। जैविकीय कारक, साथ ही बच्चा जिस तरह में वातावरण में रहता है वह भी उसके भाषा विकास को प्रभावित करते हैं। समद्ध वातावरण भाषा विकासको धनात्मक रूप से प्रभावित करता है। अतः एक अध्यापक का यह प्रयास होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों के समक्ष अच्छी भाषा का प्रयोग करें। साथ ही ऐसी सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए जोकि शिक्षार्थियों की सही भाषा सीखने में मदद करें। जब अनेक वस्तुओं को सामान्य नियम के आधार पर एक साथ जोड़ दिया जाता है और इसके बनने वाले मानसिक प्रारूप को संप्रत्यय की संज्ञा दी जाती है। बच्चों में जो संप्रत्यय बनते हैं उनकी अपनी कुछ विशेषतायें होती हैं। इन विशेषताओं में प्रमुख हैं- प्रत्यय सरल से जटिल होते हैं, प्रत्यय सामान्य से विशिष्ट की और विकसित होते हैं, प्रत्यय में संचयी होने का गुण होता है व एक क्रम में होते हैं।

बालकों में कई तरह के संप्रत्ययों का विकास होता है। जिसमें जीवन का प्रत्यय, जगह का प्रत्यय, सम्बन्धित आकार का प्रत्यय, भार का प्रत्यय, संख्या का प्रत्यय, धन प्रत्यय तथा समय का प्रत्यय प्रमुख है। शिक्षा के लिये बालकों का संप्रत्यय विकास एक महत्वपूर्ण आधार का काम करता है। शिक्षक के लिए संप्रत्यय विकास का ज्ञान रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक मनुष्य के कुछ मानसिक क्षमताएं होती हैं जिसमें बुद्धि, अभिक्षमता तथा सृजनात्मक प्रमुख है। बुद्धि कई तरह की क्षमताओं का योग है जिसके द्वारा व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ समायोजन करता है। बुधि मुख्य रूप से सामाजिक अमूर्त एवं मूर्त होती हैं। बद्धि की अभिव्यक्ति बुद्धिलब्धि के रूप में होती है। बुद्धि मापन के लिए विभिन्न परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है जिसमें बिने साइमन परीक्षण, वेसलर बुद्धिपरीक्षण, रैवेन प्रोग्रोसिव परीक्षण, कैटेल संस्कृति मुक्त परीक्षण प्रमुख है। बुद्धि का व्याख्या कारक सिद्धान्त तथा प्रक्रिया उन्मुखी के रूप में की जाती है। वंशानुक्रम एवं वातावरण व्यक्ति को मुख्य रूप से बुद्धि के निर्धारण में सहायक होते हैं।

अभिक्षमता का तात्पर्य व्यक्ति की उस आन्तरिक क्षमता से होता है जो यह बताता है कि व्यक्ति किसी विशेष क्षेत्र में कितना सफल होगा। इसके लिए सामान्य अभिक्षमता परीक्षण तथा विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अलग-अलग प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण बनाये गए हैं।

सृजनात्मकता का तात्पर्य है हटकर सोचना या करना। सृजनात्मक के कई पहलू होते हैं जैसे धारा प्रवाहित, लचीलापन, मौलिकता तथा विस्तारण। सृजनात्मकता को मापने के लिए मुख्य रूप से गिलफोर्ड प्रविधि तथा टारेन्स विधि का प्रयोग होता है।

वर्तमान समय में इन मानसिक योग्यताओं का पता लगाकर व्यक्ति को उचित परामर्श के द्वारा सफल बनाया जा सकता है। सृजनात्मकता को कई कारक प्रभावित करते हैं। शिक्षक उचित विधियों का प्रयोग कर छात्रों में सृजनशक्ति को विकसित कर सकता है। व्यक्तित्व मनोदैनिक गुणों का एक गत्यात्मक संगठन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण से समायोजन करता है। व्यक्तित्व की व्याख्या मनोवैज्ञानिकों द्वारा अलग-अलग की गयी है। व्यक्तित्व का सबसे पुराना सिद्धान्त है। जिसमें व्यक्तियों को एक खास प्रकार में बांटकर बताया गया है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों जैसे युंग एवं आइजेनक ने व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धान्त में कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों को प्रधानता दी है। व्यक्तित्व का दूसरा सिद्धान्त शीलगुण सिद्धान्त है। इसमें व्यक्तित्व की संरचना में शीलगुणों को प्रमुख आधार माना है। आलपोर्ट तथा कैटेल के शीलगुण सिद्धान्त में अपना बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। व्यक्तित्व की व्याख्या करने में सिममण्ड फ्रायड का मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त भी प्रमुख है। फ्रायड ने व्यक्तित्व की व्याख्या करने में अचेतन प्रेरकों पर विशेष बल डाला है।

व्यक्तित्व की व्याख्या मानवतावादी विचारधारा के समर्थक मैसलो व कार्ल रोजर्स द्वारा भी की गयी है। मैसलो का मानना था कि हर व्यक्ति में क्षमता होती है कि वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। इसके लिए उन्होंने आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त दिया। इसी श्रृंखला में संवृत्तिशास्त्र विचारधारा के समर्थक रोजर्स ने व्यक्तित्व का व्यक्ति केन्द्रित सिद्धान्त दिया है। जिसमें व्यक्ति की अनुभूतियों भावों को प्रमुख माना है।

व्यक्तित्व को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की प्रविधियों का वर्णन किया है। व्यक्तित्व प्रविधि के अन्तर्गत प्रश्नावली, साक्षात्कार आत्मकथा प्रमख है। वस्तुनिष्ठ प्रविधि में निरीक्षण, समाजमिति व व्यक्तित्व प्रश्नावली है। प्रक्षेपण विधि के रूप में रोरशा परीक्षण, थीमेटिक अपरेशन परीक्षण तथा वाक्यपूर्ति आदि प्रमुख है।

इकाई 5 शारीरिक विकास

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 जन्म से पूर्व शारीरिक विकास

5.3.1 डिम्बावस्था

5.3.2 पिण्ड वस्था अथवा भ्रूर्णाम अवस्था

5.3.3 भ्रूणावस्था

5.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

5.5 बाल्या वस्था में शारीरिकविकास

5.6 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

5.7 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास कार्य

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

बालक के विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका शारीरिक विकास है। बालक का शारीरिक विकास उसके समस्त व्यवहार तथा विकास के अन्य सभी पक्षों को प्रभावित करता है। शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायु मण्डल, माँसपेशीय वृद्धि अंतः स्त्रावि ग्रन्थियों आदि प्रमुख रूप से आती है। बालक के शारीरिक विकास का उसके मानसिक तथा सामाजिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि शैक्षिक दृष्टि से शारीरिक विकास को अत्याधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। पिछले अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि विकास और वृद्धि से क्या तात्पर्य है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास की प्रक्रिया भिन्न–भिन्न होती है। प्रस्तुत अध्याय में भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक विकास की चर्चा की गयी है। मनुष्य के विकास क्रम को निम्नलिखित अवस्थाओं में विभक्त किया गया है।

- भ्रूणावस्था (जन्म से पूर्व)
- शैशवावस्था (जन्म से लगभग 5–6 वर्ष तक)
- बाल्यावस्थ (7 से 12 वर्ष तक)
- किशोरावस्थ (12 से 18 वर्ष तक)
- युवावस्था (18 वर्ष से लेकर 35 वर्ष तक)
- प्रौढ़ावस्था (35 वर्ष से लेकर 60 वर्ष तक)

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे किः

1. शारीरिक विकास का अर्थ भली–भाति समझ पायेंगे।
2. शारीरिक विकास की जन्मपूर्व तथा जन्म के पश्चात की स्थितियों से भलि–भाति परिचित हो सकेंगे।
3. जन्म से पूर्व शिशु के विकास की क्रमागत अवस्थाओं को समझ पायेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
5. उन कारकों को अलग कर पायेंगे जो शिशु के विकास को प्रभावित करते है।

5.3 जन्म पूर्व शारीरिक विकास

ज्यों ही अण्ड शुक्राणु से मिलकर निशेचित होता है, त्यों ही मानव जीवन का प्रारम्भ हो जाता है। निशेचित अण्ड सर्वप्रथम दो कोषों में विभाजित होता है, जिसमे से प्रत्येक कोष पुनः दो–दो में विभाजित हो जाते हैं। कोष विभाजन की यह प्रक्रिया अत्यंत तीव्र गति से चलने लगती है। इनमें ये कुछ कोष प्रजनन कोष बन जाते हैं तथा अन्य शरीर कोष बन जाते हैं। शरीर कोषों से ही माँसपेशियों, स्नायुयों तथा शरीर के अन्य भागों का निर्माण होता है। निषेचन से जन्म तक के समय को जन्म पूर्वकाल अथवा जन्म पूर्व विकास का काल कहा जाता है। सामान्यतः जन्म पूर्वकाल दस चन्द्रमास अथवा नौ कैलेण्डर मास अथवा चालीस सप्ताह अथवा 280 दिन का होता है। भ्रूणावस्था में शारीरिक विकास तीन चरणों में होता है।

5.3.1 डिम्बावस्था –

डिम्बावस्था या गर्भास्थिति, शुक्राणु एवं डिम्ब के संयोग के समय से लेकर दो सप्ताह तक मानी जाती है। इस अवस्था में कोषों का विभाजन होता है। जाइगोट या सिंचित डिम्ब में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते है। कोषों के भीतर खोखलापन विकसित होने लगता है। संसेचित डिम्ब, डिम्बवाहिनी नलिका द्वारा गर्भाशय में आ जाता है, गर्भाशय में पहुँचने पर इसका आकार हुक के समान हो जाता है। गर्भाशय में कुछ दिनों पश्चात यह इसको सतह का आधार लेकर चिपक जाता है यहाँ पर गर्भ अपना पोषण माता से प्राप्त करने लगता है। कभी–कभी डिम्ब डिम्बवाहिनी नलिका से ही चिपक कर वृद्धि करने लगता है, ऐसे गर्भ को नलिका गर्भ कहते है। इस प्रक्रिया को आरोपण कहते है। आरोपण हो जाने के पश्चात संयुक्त कोष एक परजीवी हो जाता है। तथा जन्म पूर्व का काल वह इसी अवस्था में व्यतीत करता है। डिम्बावस्था तीन कारणों से महत्पूर्ण हो–प्रथम, निसेचित अण्ड गर्भाशय में आरोपित होने से पूर्व निष्क्रिय हो सकता है। द्वितीय, आरोपण गलत स्थान पर हो सकता है, तथा तृतीय, आरोपण होना सम्भव नही हो सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान पर अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये उत्तरों से तुलना कीजिए।

1. शारीरिक विकास से आप क्या समझते है?

....

....

....

2. डिम्बावस्था में होने वाले प्रमुख विकास का उल्लेख करिये।

....

....

....

5.3.2– पिण्डावस्था अथवा भ्रूणीय अवस्था –

जन्म पूर्व विकास का द्वितीय काल पिण्डावस्था अथवा पिण्ड काल कहलाता है। यह अवस्था निषेचन के तीसरे सप्ताह से शुरू होकर आठवे सप्ताह

तक चलती है। लगभग छहः सप्ताह तक चलने वाली पिण्डावस्था परिवर्तन की अवस्था है, जिसमें कोषों का समूह एक लधु मानव के रूप में विकसित हो जाता है। शरीर की लगभग समस्त मुख्य्य विशेषताए, वाहय तथा आन्तरिक, इस लधु अवधि में स्पष्ट हो जाती है। इस काल में विकास मष्तक– अधोमुखी दिशा मे होता है अर्थात सर्वप्रथम मष्तक क्षेत्र का विकास होता है तथा फिर धड़ क्षेत्र का विकास होता है और अन्त में पैर क्षेत्र का विकास होता है। कुपोषण, संवेगात्मक सदमों, अत्याधिक शारीरिक गतिशीलता, ग्रान्थियों के कार्यो में व्यवधान अथवा अन्य किसी कारण से भ्रूण गर्भाशय की दीवार से विलग हो सकता है। जिसके परिणाम स्वरूप स्वतः गर्भपात हो जाता हैं।

5.3.3– भ्रूणावस्था –

यह समय गर्भ तिथि के दूसरे मास से लेकर बालक के जन्म तक अर्थात दसवे चन्द्रमास अथवा नवे कैलेण्डर मास तक रहता है। तीसरे मास में 3.5 इन्च लम्बा एवं 3/4 औस भार का गर्भ होता है। दो मास बाद इसकी लम्बाई 10 इंच एवं भार 9 से 10 औंस हो जाता है। आठवें महीने में इसकी लम्बाई 10 इंच व भार 4 से 5 पौण्ड तथा जन्म के समय तक गर्भाशय भ्रूण की लम्बाई 20 इंच एवं भार 7 से 7.5 पौण्ड हो जाता है।

भ्रूणावस्था के दौरान शरीर के विभिन्न अंगों की लम्बाई में अनुपात

शरीर के अंग	8 सप्ताह का भ्रूण	20 सप्ताह का भ्रूण	40सप्ताह का भ्रूण
सिर	45%	35%	35%
धाड़	35%	40%	40%
पैर	20%	25%	25%

भ्रूणावस्था चार दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

1. गर्भाधान के उपरान्त पाँच माह तक गर्भपात की सम्भावना बनी रहती है।
2. माता के गर्भ में बालक को मिल रहे वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियाँ भ्रूण के विकास को प्रभावित कर सकती है।
3. अपरिपक्व प्रसव हो सकता है।
4. प्रसव की सरलता अथवा जटिलता सदैव ही जन्म पूर्व परिस्थितियों से प्रभावित होती है।

बोध प्रश्न

क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

3. पिण्डावस्था तथा भ्रूणावस्था में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

....

....

....

5.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

सामान्यताः मनोवैज्ञानिकों ने शैशवावस्था का अर्थ उस अवस्था से लगाया जो औसतन जन्म से 5–6 वर्ष तक चलती है। एडलर के अनुसार "शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्न्चित होता है। शैशवावस्था में विशेषकर जन्म से 3 वर्ष तक की आयु होने के दौरान शारीरिक विकास की गति अत्यंत तीव्र रहती है। शैशवावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य अध ोलिखित हैं।

1. **कोमल अंग**–जन्म के पश्चात शिशु और उसके अंग कोमल एवं निर्बल होते है। माता–पिता पर वह सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आश्रित रहता है।

2. **लम्बाई व भार**–जन्त के समय शिशु की लम्बाई लगभग 51 से० मी० होती है। प्रायः बालक जन्म के समय बालिकाओं से लगभग आधा सेमी० अधिक लम्बे होते है। शैशवावस्था के विभिन्न वर्षो में बालक–बालिका की लम्बाई (सेमी0 में) निम्नांकित तालिका में दर्शाई गयी है।

तालिका

शैशवावस्था में बालक एवं बालिकाओं की औसत लम्बाई (सेमी0)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	51-5	62-7	64-9	69-5	73-9	81-6	88-8	96-0	102-1	108-5
बालिका	51-0	60-9	64-4	66-7	72-5	80-1	87-5	94-5	101-4	107-4

प्रारम्भ में शरीर का ढाँचा लगभग 17 से 22 इंच तक लम्बा होता है और 5–6 वर्ष तक यह लम्बाई 3 फुट हो जाती है इसी प्रकार से भार का विकास होता है। शैश्वावस्था में भार (किलोग्राम) की बढ़ोत्तरी निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाई गयी है।

तालिका

शैशवावस्था में बालक एवं बालिकाओं की औसत भार (किग्रा0)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	3-2	5-7	6-9	7-4	8-4	10-1	11-8	13-5	14-8	16-3
बालिका	3-0	5-6	6-2	6-6	7-8	9-6	11-2	12-9	14-5	16-0

3. **मस्तिष्क तथा सिर–** नवजात का सिर उसके शरीर की अपेक्षा बड़ा होता है। जन्म के समय सिर की लम्बाई कुल शरीर की लगभग एक चौथाई होती है। मस्तिष्क का भार जन्म के समय लगभग 300–350 ग्राम होता है।

4. **दाँत–** जन्म के समय शिशु के दाँत नही होते है, लगभग छठे या सातवे माह में अस्थायी दूध के दाँत निकलने लगते है। एक वर्ष की आयु तक दूध के सभी दाँत निकल आते है

5. **हड्डियाँः–** कई मनोवैज्ञानिको ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि शिशु की बनावट और उसकी हड्डियों के परिपक्व होने की गति के मध्य एक सम्बन्ध होता है। जिनका शरीर अधिक मजबूत और गठीला होता है, उनके शरीर की हड्डियों में परिपवक्ता तेजी से आती है।

6. **स्नायु विकास–** स्नायु मण्डल तथा स्नायुकेन्द्रों का विकास भी 3 वर्ष तक शीघ्रता से होता है।

7. **माँसपेशियाँ–**नवजात शिशु की माँसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का लगभग 23 प्रतिशत होता है। माँसपेशियों के प्रतिशत भार में धीरे–धीरे बढ़ोत्तरी होती जाती है।

8. **अन्य अंग–** शिशु की भुजाओं तथा टांगो का विकास भी तीव्र गति से होता है। जन्म के समय शिशु के हृदय की धड़कन अनियमित होती है। कभी वह तीव्र हो जाती है तथा कभी धीमी हो जाती है। जैसे–जैसे हृदय बड़ा होता है वैसे–वैसे धड़कन में स्थिरता आ जाती है।

9. **समस्त प्रणालियों का विकास–** जन्म के पश्चात शरीर की समस्त प्रणालियों में विकास होता है, माँसपेशियां, स्नायुतन्त्र, रक्तसंचार–क्रिया आदि का उत्तरोतर विकास होता है।

बोध प्रश्न

क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

4. शैशवावस्था से आप क्या समझते है?

....

....

....

5. शैशवावस्था में होने वाले प्रमुख शारीरिक विकासों का उल्लेख करिये।

....

....

....

5.5 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

छः वर्ष की आयु से लेकर बारह वर्ष की आयु तक की अवधि बाल्यावस्था कहलाती है। बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षो के दौरान अर्थात 6 से 9 वर्ष की आयु तक शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। बाद में शारीरिक विकास की गति कुछ धीमी हो जाती है। बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन अग्रांकित है।

1. **लम्बाई व भारः–** 6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक चलने वाली बाल्यावस्था में शरीर की लम्बाई लगभग 5 सेमी० से 7 सेमी० प्रतिवर्ष की गति से बढ़ती है। बाल्यावस्था के प्रारम्भ में जहाँ बालकों की लम्बाई बालिकाओं की लम्बाई से लगभग एक सेमी० अधिक होती है वहीं इस अवधि की समाप्ति पर बालिकाओं की औसत लम्बाई बालकों की औसत लम्बाई से लगभग 1 सेमी० अधिक हो जाती है। लम्बाई में अन्तर निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका

बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (से०मी०)

आयु	6 वर्ष	7 वर्ष	8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष
बालक	108.5	113.9	119.3	123.7	128.4	133.4	138.3
बालिका	107.4	112.8	118.2	122.9	128.4	133.6	139.2

बाल्यावस्था के दौरान बालकों के भार में काफी वृद्धि होती है। 9–10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं के भार से अधिक होता है। बाल्यावस्था के विभिन्न वर्षों में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किलोग्राम) निम्नलिखित तालिकाओं में दर्शाया गया है।

तालिका

बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा0)

आयु	6 वर्ष	7 वर्ष	8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष
बालक	16.3	18.0	19.0	21.5	23.5	25.9	28.5
बालिका	16.0	17.6	19.4	21.3	23.6	26.4	29.8

2- **सिर तथ मस्तिष्क–** बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है, परन्तु शरीर के अन्य अंगों की तुलना में यह भी अपेक्षाकृत बड़ा होता है। बाल्यावस्था में मस्तिष्क आकार तथा भार दोनों ही दृष्टि से लगभग पूर्णरूपेण विकसित हो जाता है।

3. **दांत–** लगभग 5–6 वर्ष की आयु में स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते है। 16 वर्ष की आयु तक लगभग सभी स्थायी दाँत निकल आते है। स्थायी दाँतों की संख्या लगभग 28–32 होती है।

4. **हड्डियाँ–** बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या तथा उनकी दृढ़ता दोनो में ही वृद्धि होती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढ़कर लगभग 320 हो जाती है। इस अवस्था के दौरान हड्डियों का दृढ़िकरण अथवा अस्थिकरण तेजी से होता है।

5. **माँसपेशियाँ–** बाल्यावस्था में माँसपेशियों का धीरे–धीरे विकास होता जाता है। इस अवस्था में बालक माँसपेशियों पर पूर्ण नियंत्रण करने लगता है।

6. **शरीर के आकार में भिन्नता–** बालक जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है, उसमें शारीरिक भिन्नता अधिक स्पष्ट होने लगती है। चेहरा, धड़, भुजाएं या टागें आदि में पहलेसे भिन्नता परिलक्षित होने लगती है।

7. **आन्तरिक अवयव–**शरीर के आन्तरिक अवयवों का विकास भी अनेक रूपों में होता है यह विकास रक्त संचार, पाचन संस्थान तथा श्वसन प्रणाली में होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः–क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

6 बाल्यावस्था में कौन से शारीरिक परिवर्तन प्रमुख है.

उ०..

....

....

....

....

5.6 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

किशोरावस्था विकास की अत्यंत महत्वपूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है प्रथम यह युवावस्था की ड्योढी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य पाया जाता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

किशोरावस्था के लिए अंग्रेजी का शब्द Adolescence है यह लैटिन भाषा को Adolecere शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है– "परिपक्वता की ओर बढ़ना अतः स्पष्ट है कि किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है, किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित है।

1. **लम्बाई तथा भार–** किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की लम्बाई बहुत तीव्र गति से बढ़ती है। बालिकाएं प्रायः 16 वर्ष की आयु तक तथा बालक लगभग 18 वर्ष की आयु तक अपनी अधिकतम लम्बाई प्राप्त कर लेते है। किशोरावस्था में बालक– बालिकाओं की औसत लम्बाई (सेमी0)

निम्नांकित तालिका में दर्शाई गयी है।

तालिका

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (सेमी0)

आयु	12वर्ष	13 वर्ष	14 वर्ष	15 वर्ष	16 वर्ष	17 वर्ष	18 वर्ष
बालक	138.3	144.6	150.1	155.5	159.5	161.4	161.8
बालिका	139.2	143.9	147.6	149.6	151.0	151.5	151.6

किशोरावस्था में भार में काफी वृद्धि होती है। बालको का भार बालिकाओं के भार से अधिक बढ़ता है। इस अवस्था के अंत में बालकों का भार बालिकाओं के भार से अधिक बढ़ता है। किशोरावस्था के विभिन्न वर्षो में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा0) निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत भार (कि०ग्रा०)

आयु	12 वर्ष	13 वर्ष	14 वर्ष	15 वर्ष	16 वर्ष	17 वर्ष	18 वर्ष
बालक	28.5	32.1	35.7	39.6	43.2	45.7	47.3
बालिका	29.8	33.3	36.8	39.8	41.1	42.2	43.1**2.**

2. **सिर तथा मस्तिष्क–** किशोरावस्था में सिर तथा मस्तिष्क का विकास जारी रहता है, परन्तु इसकी गति काफी मंद हो जाती है। लगभग 16 वर्ष की आयु तक सिर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है।

3. **हड्डियाँ–** किशोरावस्था में हड्डियों के दृढिकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप अस्थियों का लचीलापन समाप्त हो जाता है तथा वे दृढ़ हो जाती है किशोरावस्था में हडिडयों की संख्या कम होने लगी है। प्रौढ व्यक्ति में केवल 206 हड्डियाँ होती है।

4. **दाँत–** किशोरावस्था में प्रवेश करने से पूर्ण बालक तथा बालिकाओं के लगभग 28–32 स्थायी दाँत निकल जाते है।

5. **मॉसपेशियाँ–** किशोरावस्था में मॉसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। किशोरावस्था की समाप्ति पर मॉसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का लगभग 45 प्रतिशत हो जाता है।

6. **अंगो की वृद्धि–** आन्तरिक अंगो की वृद्धि होती है। पाचन प्रणाली, रक्त संचार प्रणाली, ग्रन्थिप्रणाली, श्वांस तन्त्र आदि में विकास चरमोत्कर्ष पर होता है।

7. **गले की ग्रन्थि का विकास–** गले के थायराइड–ग्रन्थि बढ़ने से किशोर–किशोरियों की वाणी में अन्तर आ जाता है। किशोरों की वाणी कर्कश होने लगती है जबकि किशोरियों की वाणी में कोमलता और क्षीणता आने लगती है।

8. **काम ग्रन्थि का विकास–** काम ग्रन्थि के विकास स्वरूप किशोर तथा किशोरियों में लिंगीय परिवर्तन होने लगते है। किशोरियों में मासिक रक्त स्त्राव आरभ होता है तथा किशोरों में रात्रि–दोष के लक्षण पाये जाते है।

9. **विशेष अंगो का विकास–** कुछ अन्य शारीरिक अंगो में भी परिवर्तन होते है। किशोरियों में वक्षस्थल तथा स्तनों की वृद्धि होती है। किशोरो के कन्धों की चौड़ाई बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः– क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

7 किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को लिखिए?

....

....

....

8. बालिकाओं में होने वाले प्रमुख शारीरिक परिवर्तन का उल्लेख करिये।

....

....

....

5.7 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते है जो निम्नवत है।

5.7.1 जन्म पूर्व अवस्था को प्रभावित करने वाले तत्वः–

1. **भोजनः–** गर्भकाल में भ्रूण का विकास बहुत शीध्रता से होता है उसे प्रोटीन, खनिज, वसा आदि पोषक तत्वों की आवश्यकता है। इन्ही तत्वों से भ्रूण का संतुलित विकास होता है। ऐसी अवस्था में यदि माता को संतुलित आहार नहीं मिलता है तो वह कुपोषण की शिकार हो जाती है जिसका सीधा असर भ्रूण विकास पर पड़ता है।

2. **माता का स्वास्थ्यः–** यदि माता को पहले से सिफलिस गोनोरिया आदि रोग हो तो भ्रूण का विकास प्रभावित हो सकता है।

3. **मद्यपानः–** मद्यपान तथा धूम्रपान से शिशु में रक्तचाप दोष उत्पन्न हो जाता है। यह गर्भस्थ शिशु के हृदय को दुर्बल कर देता।

4. **सांवेगिकताः–** यदि माता बहुत अधिक संवेदन शील है तो उसके सुख–दुख दोनों का प्रभाव होने वाले शिशु पर पड़ता है।

5.7.2 जन्म के पश्चात शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. **वंशानुक्रम–** बालक के शारीरिक विकास पर उसके माता–पिता के स्वास्थ्य, शारीरिक संरचना या पूर्वजों के शारीरिक दोषों व रोगो का प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ माता–पिता की संतान प्रायः शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होती है।

2. **वातावरण–** बालक के शारीरिक विकास में उसको मिलने वाले वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वायु, धूप तथा स्वच्छता वातावरण के तीन मुख्य तत्व है। यह तत्व शारीरिक विकास को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनो रूप में प्रभावित करता है।

3. **भोजन**– पौष्टिक तथा संतुलित भोजन बालक के शारीरिक विकास की स्वाभाविक ढ़ग से होने में विशेष रूपसे सहायता प्रदान करता है। पौष्टिक तथा संतुलित भोजन मिलने पर बालक को शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम होता है।

4. **पारिवारिक स्थिति–** परिवार की सामाजिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक परिस्थिति का भी बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता है।

परिवार के रहन–सहन, सामाजिक परम्पराओं तथा खान–पान के अनुरूप ही बालक का विकास होता है।

5. **दिनचर्याः–** बालक की दिनचर्या का उसके शारीरिक विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। नियमित दिनचर्या अच्छे स्वास्थ्य की आधार शिला होती है। खाने–नहाने, पढ़ने, खेलने सोने आदि दैनिक कार्यो को नियमित समय पर करने से बालक का स्वस्थ्य विकास होता है।

6. **विश्राम तथा निन्द्रा**– शरीर के स्वस्थ विकास के लिए विश्राम तथा निद्रा आवश्यक है। थकान शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। विश्राम तथा निन्द्रा थकान को दूर करके बालक के शरीर को विकसित होने के अनुकूल अवसर प्रदान करते है। बाल्यावस्था में लगभग दस घण्टे व किशोरावस्था में लगभग आठ–घण्टे की निद्रा प्रर्याप्त होती है।

7. **खेल तथा व्यायाम–** शारीरिक विकास पर खेल तथा व्यायाम का बहुत प्रभाव होता है, इसलिए बालकों के खेल तथा व्यायाम पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। छोटा शिशु अपने हाथों व पैरों को चला कर व्यायाम कर लेता है। परन्तु बालकों तथा किशोरों के लिए खुली हवा में खेलने तथा व्यायाम करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. **प्रेम तथा सहानुभूतिः**– माता–पिता, परिवारजनों, अध्यापको तथा अन्य व्यक्तियों से मिलने वाला प्रेम, स्नेह तथा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार बालक के शारीरिक विकास को द्विगुणित कर सकता है। माता–पिता के स्नेह से वंचित बालक दुखी रहने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप उसका संतुलित शारीरिक विकास नहीं हो पाता है।

9. **अन्य कारक–** उपरोक्त वर्णित कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी व्यक्ति के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। यह निम्नलिखित हैं –

- रोगो के कारण शरीर में उत्पन्न विकृतियॉ।
- दुघर्टना के कारण शारीरिक अंगो की हानि अथवा कार्यक्षमता में कमी।
- भौगोलिक परिस्थितियॉ।
- गर्भावस्था में की गयी असावघनियॉ।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः— क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

9. शारीरिक परिवर्तन किस प्रकार वातावरणीय कारकों से प्रभावित होता हैं?

....

....

....

10. आनुवांशिक कारक किस प्रकार शारीरिक परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं?

....

....

....

5.8 सारांश

गर्भावस्था, शैशवावस्था, तथा किशोरावस्थ में होने वाले शारीरिक विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों के विवेचन से स्पष्ट है कि शारीरिक विकास मानव विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है तथा उचित परिस्थितियों में ही शारीरिक रूप से स्वस्थ शिशुओं, बालकों तथा किशोरों का निर्माण किया जा सकता है।

5.9 अभ्यास कार्य

1. किशोरावस्था में पाये जाने वाले प्रमुख लक्षणों का उल्लेख करें।
2. एक बालक के शारीरिक विकास का अवलोकन करें और उसमें कौन—कौन से परिवर्तन दृष्टिगत हो रहे हैं उनका चार्ट बनायें।

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शरीर के वाह्य एवं आन्तरिक अंगों में जो आयु के अनुसार परिवर्तन होते हैं, वह शारीरिक विकास के अन्तर्गत आता है।
2. जन्म से पूर्व डिम्ब में जो विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं उनका अध्ययन करें और जो विकास होते हैं उनका उल्लेख करें।

3. पिण्डावस्था एवं भ्रूणावस्था का अध्ययन करें निम्नलिखित आधार पर अन्तर लिखें।

- अवधि के आधार पर
- आकार के आधार पर
- क्रियाओं के आधार पर

4. बालक के जन्म लेने के तुरन्त बाद से लगभग 5–6 वर्ष तक जो अवस्था होती है,शैशवावस्था कहलाती है।
5. शरीर के कोमल अंगों का विकास
   लम्बाई व भार का विकास
   शरीर के आन्तरिक अंगों का विकास
   स्नायु संस्थान का विकास
6. बाल्यावस्था में होने वाले विकास का अध्ययन करें व उनकों क्रमबद्ध लिखें।
7. लम्बाई व भार में परिवर्तन
   मस्तिष्क में परिवर्तन
   हड्डियों व दांत में परिवर्तन
   विशेष शारीरिक अंगों में परिवर्तन व विकास
   आन्तरिक अंगों में परिवर्तन
8. शारीरिक संरचना में परिवर्तन
   आन्तरिक अंगों में परिवर्तन
   लिंगीय परिवर्तन
9. वातावरणीय कारकों का अध्ययन करें। उनका शारीरिक परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ता है क्रमबद्ध करके लिखें।
10. वंशानुक्रम सम्बन्धी कारकों का अध्ययन करें का अवलोकन करें। माता पिता की शारीरिक संरचना, शारीरिक कमी, स्वास्थ्य आदि कारक हैं।

5.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, ए0के0 (1994) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।

Hurlock, E.B. (1981) Developmental Psychology : A life span approach fifth edition. Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

Hurlock, E.B. (1997) Child Development : Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई 6 संज्ञानात्मक विकास

संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 संज्ञानात्मक विकास का अर्थ
6.4 प्याजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
 6.4.1 संवेदी–गामक अवस्था
 6.4.2 पूर्व संक्रियात्मक अवस्था
 6.4.3 मूर्त संक्रियात्मक अवस्था
 6.4.4 औपचारिक संक्रिया की अवस्था
6.5 वायगास्की का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
6.6 जेराम ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
 6.6.1 प्रतिनिधित्व
  6.6.1.1 सक्रियता प्रतिनिधित्व
  6.6.1.2 दृश्य प्रतिमा प्रतिनिधित्व
  6.6.1.3 सांकेतिक प्रतिनिधित्व
6.7 सारांश
6.8 अभ्यास कार्य
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में शारीरिक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में संज्ञानात्मक विकास के पक्षों का अध्ययन किया जायेगा। मनुष्य के विकास में संज्ञानात्मक विकास की उपयोगिता अत्यन्त है। समस्त प्रकार की मानसिक प्रक्रियायें, संज्ञानात्मक विकास के अन्तर्गत आती है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का मत है कि एक शिक्षक के लिये संज्ञानात्मक विकास का ज्ञान होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तभी वह विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से समझ पाता है। संज्ञानात्मक विकास बालकों में होने वाले बौद्धिक विकास को इंगित करता

है। इस इकाई का अध्ययन करके आप संज्ञानात्मक विकास के बहुआयामीय पक्षों को समक्ष सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि:

- संज्ञान का अर्थ समझ सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास का अर्थ समझ सकेंगे व जो मानसिक क्रियायें इनसे जुड़ी हैं, उसकी विवेचना कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास में प्याजे के द्वारा किये गये कार्यों की महत्ता की विवेचना कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास में किये गये अन्य मनोवैज्ञानिकों के प्रयास का अध्ययन कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास के शैक्षिक निहितार्थ की विवेचना कर सकेंगे।

6.3 संज्ञानात्मक विकास का अर्थ

संज्ञानात्मक विकास मनुष्य के विकास का महत्वपूर्ण पक्ष है। 'संज्ञान' शब्द का अर्थ है 'जानना' या 'समझना'। यह एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है जिसमें विचारों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। संज्ञानात्मक विकास शब्द का प्रयोग मानसिक विकास के व्यापक अर्थो में किया जाता है जिसमें बुद्धि के अतिरिक्त सूचना का प्रत्यक्षीकरण, पहचान, प्रत्याह्वान और व्याख्या आता है। अतः संज्ञान में मानव की विभिन्न मानसिक गतिविधियों का समन्वय होता है।

मनोवैज्ञानिक 'संज्ञान' का प्रयोग ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में करते हैं। 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' शब्द का प्रयोग Vlric Neisser ने अपनी पुस्तक 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' में सन् 1967 ई0 में किया था।

संज्ञानात्मक विकास इस बात पर जोर देता है कि मनुष्य किस प्रकार तथ्यों को ग्रहण करता है और किस प्रकार उसका उत्तर देता है। संज्ञान उस मानसिक प्रक्रिया को सम्बोधित करता है जिसमें चिन्तन, स्मरण, अधिगम और भाषा के प्रयोग का समावेश होता है। जब हम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में संज्ञानात्मक पक्ष पर बल देते है तो इसका अर्थ है कि हम तथ्यों और अवधारणाओं की समझ पर बल देते हैं।

यदि हम विभिन्न अवधारणाओं के मध्य के सम्बन्धों को समझ लेते हैं हमारी संज्ञानात्मक समझ में वृद्धि होती है संज्ञानात्मक सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति किस प्रकार सोचता है, किस प्रकार महसूस करता है और किस प्रकार व्यवहार करता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अपने अन्दर ज्ञान के सभी रूपों यथा स्मृति, चिन्तन, प्रेरणा और प्रत्यक्षण को शामिल करती है।

6.4 प्याजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण स्थान Jean Piaget का है। उन्होंने अपने तीन बच्चों और एक भतीजे के विकास का अध्ययन किया और बताया कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास बड़ों के संज्ञानात्मक विकास से अलग होता है। बच्चों का संज्ञानात्मक विकास यथार्थ की एक अलग समझ पर आधारित होता है जो कि परिपक्वता और अनुभव के साथ धीरे–धीरे बदलता जाता है। इन सभी बदलावों को आयु के आधार पर अवस्थाओं में बांटा जा सकता है।

6.4.1 संवेदी–गामक अवस्था

यह अवस्था जन्म से दो वर्ष तक चलती है। इस अवस्था का बालक चीजों को इधर–उधर करना, वस्तुओं को पहचानने की कोशिश करना, किसी चीज को पकड़ना, मुंह में डालना आदि क्रियाएं करता है। इन क्रियाओं के माध्यम से शिशु अपने आस–पास के वातावरण का संवेदी–गामक ढांचा बनाता है अर्थात उसकी संवेदनाएँ परिष्कृत होती है तथा पेशीयों में मजबूती व गत्यात्मक क्रियाओं में नियन्त्रण आना प्रारम्भ हो जाता है। शिशु असहाय जीवधारी से गतिशील, अर्द्ध–भाषी तथा सामाजिक प्राणी बनने की प्रक्रिया में होते हैं। वे आवाज व प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया करते है। रूचिकर कार्यों को करते रहने की कोशिश करते है व वस्तुओं को स्थिर मानते है।

6.4.2 पूर्व संक्रियात्मक अवस्था

यह अवस्था दो वर्ष से सात वर्ष तक चलती है। इस अवस्था की दो प्रमुख विशेषताएं होती है प्रथम, संवेदी–गामक संगठन का संवर्धन तथा दूसरा, कार्यो के आत्मीकरण का प्रारम्भ जिससे संक्रियाओं का निर्माण होने लगे। साथ ही, इस अवस्था में संकेतात्मक कार्यो का प्रादुर्भाव तथा भाषा का प्रयोग भी होता है। इस अवस्था को दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. पूर्व–प्रत्ययात्मक काल

2. आंत–प्रज्ञ काल

पूर्व–प्रत्यात्मक काल लगभग 2 वर्ष से 4 वर्ष तक चलता है। इस स्तर का बच्चा सूचकता विकसित कर लेता है अर्थात किसी भी चीज के लिए प्रतिभा, शब्द आदि का प्रयोग कर लेता है। छोटा बच्चा माँ की प्रतिमा रखता है। बालक विभिन्न घटनाओं और कार्यो के संबंध में क्यों और कैसे जानने में रूचि रखते हैं। इस अवस्था में भाषा विकास का विशेष महत्व होता है। दो वर्ष का बालक एक या दो शब्दों के वाक्य बोल लेता है जबकि तीन वर्ष का बालक आठ–दस शब्दों के वाक्य बोल लेता है। आंत–प्रज्ञ चिन्तन की अवस्था 4 वर्ष से 7 वर्ष तक चलती है। बालक वातावरण में जैसा दिखता है वैसी प्रतिक्रिया देता है। उसमें तार्किक चिन्तन की कमी होती है। अर्थात बालक का चिन्तन प्रत्यक्षीकरण से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए एक गिलास पानी को यदि किसी चौड़े बर्तन में लोट देते हैं और बच्चे से पूछे कि "पानी की मात्रा उतनी ही है या कम या अधिक हो गयी। तो बच्चा कहेगा "चौड़े बर्तन में पानी कम है। क्योंकि इस पानी की सतह नीची है।" ऐसा बालक द्वारा कारण व परिणाम को अलग न कर पाने के कारण होता है।

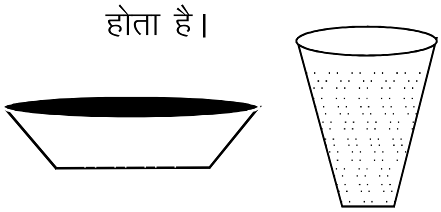

मात्रा का संरक्षण

6.4.3 मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

यह अवस्था सात वर्ष से बारह वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में यदि समस्या को स्थूल रूप में बालक के सामने प्रस्तुत किया जाता है जो वह समस्या का समाधान कर सकते हैं तथा तार्किक संक्रियाएँ करने लगते हैं। इस अवस्था में बालक गुणों के आधार पर वस्तुओं को वर्गीकृत कर सकते है जैसे एक गुच्छे में गुलाब व गुल्हड़ के फूल एक साथ हैं। बालक इनको अलग–अलग रख सकता है। वे चीजों को छोटे से बड़े के क्रम में ठीक प्रकार लगा लेते हैं।

प्याजे ने इस अवस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि बालक के द्वारा संरक्षण के प्रत्यय की प्राप्ति माना है। मूर्त संक्रियावस्था में बालकों में आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति कम होने लगती है और वे अपने बाह्य जगत को अधिक महत्व देने लगते है। जब मूर्त सक्रियाएं बालकों की समस्या का समाधान करने की दृष्टि से उपयुक्त नही रह पाती है तब बालक बौद्धिक विकास के अन्तिम चरण की ओर अग्रसर होने

लगता है।

6.4.4 औपचारिक संक्रिया की अवस्था

औपचारिक सक्रिया की अवस्था ग्यारह वर्ष से पन्द्रह वर्ष तक चलती है। चिन्तन ज्यादा लचीला तथा प्रभावशाली हो जाता है। बालक अमूर्त बातों के सम्बन्ध में तार्किक चिन्ता करने की योग्यता विकसित कर लेता है। अर्थात शाब्दिक व सांकेतिक अभिव्यक्ति का प्रयोग तार्किक चिन्तन में करता है। बालक परिकल्पना बनाने लगता है, व्याख्या करने लगता है तथा निष्कर्ष निकालने लगता है। तर्क की अगमन तथा निगमन दोनों विधियों का प्रयोग वह करता है। अब समस्या को मूर्त रूप में प्रस्तुत करना जरूरी नही है। बालक का चिन्तन पूर्णतः क्रमबद्ध हो जाता है अतः दी गयी समस्या का तार्किक रूप से सम्भावित समाधान ढूंढ लेता है।

प्याजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की ये चार अवस्थाएं क्रम में होती है। दूसरी अवस्था में पहुंचने से पहले पहली अवस्था से गुजरना आवश्यक है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुंचने के क्रम में बालक में सोचने में मात्रात्मक के साथ–साथ गुणात्मक वृद्धि होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. संज्ञानात्मक विकास से क्या तात्पर्य समझते हैं?

....

....

....

2. प्याजे द्वारा संज्ञानात्मक विकास की किन विभिन्न अवस्थााओं का उल्लेख किया गया है?

....

....

....

3. मूर्त संक्रिया अवस्था में सामान्यतः बालकों में कौन–कौन से प्रत्यय बन जाते हैं?

....

....

....

6.5 वायगास्की का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

वायगास्की ने सन 1924–34 में इंस्टीट्यूट आफ साइकोलाजी (मास्को) में अध्ययन किया। यहां पर उन्होंने संज्ञानात्मक विकास पर विशेष कार्य किया विशेषकर भाषा और चिन्तन के सम्बन्ध पर। उनके अध्ययन में संज्ञान के विकास के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक कारकों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। वायगास्की के अनुसार भाषा समाज द्वारा दिया गया प्रमुख सांकेतिक उपकरण है जो कि बालक के विकास में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

जिस प्रकार हम जल के अणु का अध्ययन उसके भागों (H_2 & H_2) के द्वारा नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार व्यक्ति का अध्ययन भी उसके वातावरण से पृथक होके नही किया जा सकता है। व्यक्ति का उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक सन्दर्भ में अध्ययन ही हमें उसकी समग्र जानकारी प्रदान करता है। वायगास्की ने संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन के दौरान प्याजे का अध्ययन किया और फिर अपना दृष्टिकोण विकसित किया।

Piaget के अनुसार विकास और अधिगम दो अलग धारणाएं हैं जिनमें संज्ञान भाषा के विकास को एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में प्रभावित करता है। विकास हो जाने के पश्चात् उस विशेष अवस्था में आवश्यक कौशलों की प्राप्ति ही अधिगम है।

इस प्रकार Piaget के सिद्धान्त के अनुसार विकास, अधिगम की पूर्वावस्था है न कि इसका परिणाम। अर्थात् अधिगम का स्तर विकास के ऊपर है। Piaget के अनुसार अधिगम के लिए सर्वप्रथम एक निश्चित विकास स्तर पर पहुंचना आवश्यक है।

वायगास्की के अनुसार अधिगम और विकास पारस्परिक प्रक्रिया में बालक की सक्रिय भागीदारी होती है जिसमें भाषा का संज्ञान पर सीधा प्रभाव होता है। अधिगम और विकास अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाएं है। जो कि छात्र के जीवन के पहले दिन से प्रारम्भ हो जाती है। वायगास्की के अनुसार विभिन्न बालकों के अलग–अलग विकास स्तर पर अधिगम की व्यवस्था समरूप तो हो सकती है किन्तु एकरूप नही क्योंकि सभी बच्चों का सामाजिक अनुभव अलग होता है। उनके अनुसार अधिगम विकास को प्रेरित करता है। उनका यह दृष्टिकोण Piaget एवं अन्य सिद्धान्तों से भिन्न है।

वायगास्की अपने सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त के लिए जाने जाते है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक अर्न्तक्रिया ही बालक की सोच व व्यवहार में निरन्तर बदलाव लाता है और जो एक संस्कृति से दूसरे में भिन्न हो सकता है। उनके अनुसार किसी बालक का संज्ञानात्मक विकास उसके अन्य व्यक्तियों से अन्तर्सम्बन्धों पर निर्भर करता है।

वायगास्की ने अपने सिद्धान्त में संज्ञान और सामाजिक वातावरण का सम्मिश्रण किया। बालक अपने से बड़े और ज्ञानी व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर चिन्तन और व्यवहार के संस्कृति अनुरूप तरीके सीखते है। सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त के कई प्रमुख तत्व है। प्रथम महत्वपूर्ण तत्व है– व्यक्तिगत भाषा। इसमें बालक अपने व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए स्वयं से बातचीत करते है।

सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है–निकटतम विकास का क्षेत्र।

वायगास्की ने शिक्षक के रूप में अनुभव के दौरान यह जाना है कि बालक अपने वास्तविक विकास स्तर से आगे जाकर समस्याओं का समाधान कर सकते है। यदि उन्हें थोड़ा निर्देश मिल जाए। इस स्तर को वायगास्की ने सम्भावित विकास कहा। बालक के वास्तविक विकास स्तर और सम्भावित विकास स्तर के बीच के अन्तर/क्षेत्र को वायगास्की ने निकटतम विकास का क्षेत्र कहा।

6.6 जेरोम ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास का माडल प्रस्तुत किया। उनके अनुसार यह वह माडल है जिसके द्वारा मनुष्य अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है।

ब्रूनर ने अपना संज्ञान सम्बन्धी अध्ययन सर्वप्रथम प्रौढ़ो पर किया, तत्पश्चात् विद्यालय जाने वाले बालकों पर, फिर तीन साल के बालकों पर और फिर नवजात शिशु पर किया।

6.6.1 प्रतिनिधित्व–

प्रतिनिधित्व का ब्रूनर के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतिनिधित्व उन नियमों की व्यवस्था है जिनके द्वारा व्यक्ति अपने अनुभवों को भविष्य में आने वाली घटनाओं के लिए संरक्षित करता है। यह व्यक्ति विशेष के लिए उसके

संसार को/वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रतिनिधित्व तीन प्रकार से हो सकता है –

प्रतिनिधित्व

संक्रियानात्मक प्रतिनिधित्व | दृश्यप्रतिमा प्रतिनिधित्व | प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व

6.6.1.1 सक्रियता प्रतिनिधित्व–

यह प्रतिनिधितव की सबसे प्रारम्भिक अवस्था है जो जीवन के प्रथम वर्ष के उत्तरार्द्ध में पाया जाता है। इसके अन्तर्गत वातावरणीय वस्तुओं पर बालक की प्रतिक्रिया आती है। इस प्रकार का प्रतिनिधित्व संवेदी–गामक अवस्था की पहचान हैं यह व्यक्ति पर केन्द्रित होता है। अतः इसे आत्म केन्द्रित भी कह सकते है।

6.6.1.2 दृश्यप्रतिमा प्रतिनिधित्व –

यह प्रत्यक्षीकरण को क्रिया से अलग करता है। क्रियाओं की पुनरावृत्ति द्वारा ही बालक के मन में क्रियाओं की अवधारणा का विकास होता है। अर्थात् क्रियाओं को स्थानिक परिपेक्ष्य में समझना आसान हो जाता है। इस प्रकार इस प्रतिनिधित्व में क्रियामुक्त अवधारणा का विकास होता है। यह प्रतिनिधित्व प्रथम वर्ष के अन्त तक पूर्णतया विकसित हो जाता है।

6.6.1.3 सांकेतिक प्रतिनिधित्व –

यह किसी अपरिचित जन्मजात प्रतीकात्मक क्रिया से प्रारम्भ होता है जो कि बाद में विभिन्न व्यवस्थाओं में रूपान्त्रित हो जाता है। क्रिया और अवधारणा प्रतिकात्मक क्रियाविधि को प्रदर्शित कर सकती है। लेकिन भाषा प्रतिकात्मक क्रिया का सबसे अधिक विकसित रूप है।

प्रतिनिधित्वों के मध्य सम्बन्ध और अन्तः क्रिया

यह तीनों प्रतिनिधित्व वैसे तो एक दूसरे से पृथक व स्वतन्त्र है किन्तु यह एक दूसरे में तब्दील भी हो सकते है। यह स्थिति तब होती है जब बालक के मन में कोई दुविधा होती है और वह अपनी समस्या को सुलझाने के लिए सभी प्रतिनिधित्वों की पुनरावृत्ति करता है। यह तीन प्रकार से हो सकता है –

1. मिलान द्वारा
2. बेमिलान द्वारा
3. एक दूसरे से स्वतन्त्र रहकर

अगर दो प्रतिनिधित्व आपस में मिलान करते है तो व्यक्ति को दुविधा नहीं होती है और वह सामान्य प्रक्रियाओं को करते हुए अपनी समस्याओं को सुलझा लेता है। जब दो प्रतिनिधित्व में बेमिलान होता है तो किसी एक में सुधार किया जाता है या उसे दबा कर दिया जाता है। पूर्व किशोरावस्था में यह दुविधा क्रिया और दृश्य व्यवस्था के बीच होती है जिनमें उन्हें एक या अन्य चुनना होता है। बार–बार समस्या समाधान करते–करते उनमें प्राथमिकता का विकास होता है।

क्रिया और प्रतिनिधित्व एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं हो सकते है किन्तु प्रतिकात्मक प्रतिनिधित्व उन दोनों से स्वतन्त्र हो सकता है। प्रतिनिधित्व के माध्यम के रूप में भाषा अनुभव से अलग होती है और जब यह अनुभव और चिन्तन के आधार पर प्रयोग किया जाता है तो उच्च स्तर की मानसिक क्रियाओं को करने में सक्षम होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

4) वायगास्की के संज्ञानात्मक विकास में भाषा सम्बन्धी विचार क्या है ?

....

....

....

5) ब्रूनर द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त में अनुभूतियों को मानसिक रूप से एक शिशु किन तरीकों से प्रकट करता है ?

....

....

....

6.7 सारांश

संज्ञान से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसमें संवेदना, प्रत्यक्षण, स्मृति, चिंतन आदि समस्त मानसिक क्रियाये सम्मिलित होती है। संज्ञानात्मक विकास का एक सिद्धान्त प्याजे द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसर बालकों में संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थायें होती है–संवेदी–पेशीय अवस्था, प्राक संक्रियात्मक अवस्था, ठोस संक्रिया की अवस्था तथा औपचारिक संक्रिया की अवस्था। पियाजे के सिद्धान्त की शिक्षकों व शिक्षार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगिता है।

संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या वायगोस्की द्वारा भी की गयी। वायगास्की ने अपने सिद्धान्त में भाषा और चिंतन के महत्व पर जोर दिया। संज्ञानात्मक विकास में ब्रूनर ने भी एक सिद्धान्त की व्याख्या की है। इसके अनुसार बालकों के संज्ञानात्मक विकास में सक्रियता, दृश्य प्रतिमा तथा सांकेतिक का महत्वपूर्ण स्थान है।

6.8 अभ्यास कार्य

1. जॉ प्याजे व वायगास्की के संज्ञानात्मक सिद्धान्त का तुलनात्मक विवेचन करें।
2. जेराम ब्रूनर द्वारा दिये गये सिद्धान्त का उल्लेख करे।
3. संज्ञानात्मक विकास के तीनों सिद्धान्तों का शैक्षिक परिस्थितियों में निहितार्थ लिखे।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समस्त प्रकार की मानसिक क्रियायें जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षण, स्मरण, चिंतन आदि का

   समावेश होता है, उनका सही विकास।
2. 1) संवेदी–पेशीय अवस्था

   2) प्राकसंक्रियात्मक अवस्था

   3) ठोस संक्रिया की अवस्था

   4) औपचारिक संक्रिया की अवस्था
3. संरक्षण, संबन्ध तथा वर्गीकरण सम्बन्धी विभिन्न प्रत्यय।
4. वायगास्की के सिद्धान्त का अध्ययन करे। जिसमें संज्ञानात्मक विकास में भाषा के

   महत्व को इंगित किया गया है। उनकी विवेचना करके लिखे।
5. 1) सक्रियता

   2) दृश्य प्रतिमा

   3) सांकेतिक

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, ए0के0 (1994) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।

Santrock, J.W. (2007) Child Development, eleventh edition. Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई –7 संवेगात्मक विकास

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संवेगात्मक विकास

7.4 संवेगों की विशेषताएं

7.5 बच्चों के संवेगों की विशेषताएँ

7.6 बच्चों के सामान्य संवेगात्मक ढ़ग

7.6.1 डर

7.6.2 क्रोध

7.6.3 ईष्या

7.6.4 हर्ष संतोष एंव सुख

7.6.5 स्नेह

7.6.6 उत्सुकता

7.7 किशोर के सामान्य संवेगात्मक ढ़ग

7.7.1 डर

7.7.2 चिन्ता

7.7.3 दुश्चिन्ता

7.7.4 क्रोध

7.7.5 ईष्या

7.7.6 जलन की भावना

7.7.7 नाराज होना

7.7.8 उत्सुकता

7.7.9 स्नेह

7.7.10 दुःख

7.7.11 खुशी

7.8 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

7.9 संवेगात्मक विकास का शैक्षिक निहितार्थ

7.10 सांराश

7.11 अभ्यास कार्य

7.12 बोध प्रश्नो के उत्तर

7.13 कुछ उपयोगी पुस्मकें

7.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक विकास का मानव जीवन पर कितना प्रभाव पड़ता है इसकी चर्चा पिछली इकाई में की जा चुकी है। मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के व्यवहार उसके द्वारा प्रकट किये जाते है। एक व्यक्ति एक ही परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अलग–अलग व्यवहार क्यों प्रकट करता है, यह उसके संवेग पर निर्भर करता है। एक बच्चे द्वारा हँसते हुये अचानक हाथ पैर पटकने का व्यवहार दूसरे को आश्चर्य में डाल सकता है। इस तरह के संवेगात्मक व्यवहार की विशेषतायें, संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटक, अलग–अलग आयु–वर्ग में प्रकट होने वाले संवेग आदि की जानकारी आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई को इन्ही समस्त बातों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। जिसकी जानकारी आपको मिलेंगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- संवेग का अर्थ समझ सकेंगे;
- संवेगात्मक विकास का अर्थ समझ सकेंगे;
- संवेगों की सामान्य विशेषताएँ समझ सकेंगे तथा बच्चों में पाये जाने वाले संवेगों की विशेषताएं जान सकेंगे;
- बच्चों तथा किशोरों में पाये जाने वाले संवेगात्मक व्यवहार के प्रारूप को समझ सकेंगें;
- संवेगात्मक विकास को कौन–कौन से कारक प्रभावित करते है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- विभिन्न आयु में प्रकट होने वाले संवेगो का ज्ञान प्राप्त कर सकेगे व इन संवेगों का शैक्षिक निहितार्थ समझ सकेंगे;

7.3 संवेगात्मक विकास

जीवन में संवेगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा व्यक्ति के वैयक्तिक

एवं सामाजिक विकास में संवेगों का योगदान होता है। लगातार संवेगात्मक असन्तुलन/अस्थिरता व्यक्ति के वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है तथा अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक और समाजिक समस्याओं को उत्पन्न करती है। दूसरी ओर संवेगात्मक रूप से स्थिर व्यक्ति खुशहाल, स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अतः संवेग व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को प्रभावित करते है।

अंग्रेजी का 'Emotion' शब्द लेटिन भाषा के शष्द 'Emovere' से लिया गया है। 'Emovere' का अर्थ होता है– Stir up, to agitate या to excite अर्थात – उत्तेजित होना।

इंगलिश तथा इंगलिश (1958) के अनुसार– "संवेग एक जटिल भाव की अवस्था होती है जिसमें कुछ खास–खास शारीरिक व ग्रन्थीएँ क्रियाएँ होती हैं।"

बेरान, बर्न तथा कैण्टोविल (1980) के अनुसार– " संवेग से तात्पर्य एक एसी आत्मनिष्ठ भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरिक उत्तेजना पैदा होती है और फिर जिसमें कुछ खास–खास व्यवहार होते है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि –संवेग–

1. जटिल मानसिक अवस्था है जिसमें शारीरिक व मानसिक पक्षों का समावेश होता है।
2. किसी व्यक्ति, वस्तु एवं स्थिति के सम्बन्ध में सुख–दुख की अनुभूति कम या अधिक मात्रा में होती है।
3. संवेग की अवस्था में आंगिक प्रक्रियाओं जैसे नाड़ी, श्वसन, ग्रन्थिस्त्रावों का एक विसरित उद्दीपन होता है।
4. व्यक्ति की चिन्तन एवं तर्क शक्ति क्षीण हो जाती है।
5. व्यक्ति आवेगी बल का अनुभव करता है।

संवेगो के विकास के सन्दर्भ में दो मत है–

1. **संवेग जन्मजात होते है** इस मत को मानने वालो में वेकविन तथा हांलिगवर्थ आदि है।

   हांलिगवर्थ का मानना है कि प्राथमिक संवेग जन्मजात होते है। वाटसन ने बाताया कि जन्म के समय बच्चे में तीन प्राथमिक संवेग भय, क्रोध व प्रेम होते है।

2. संवेग अर्जित किए जाते है - कुछ मनोवैज्ञनिको का मत है कि संवेग विकास एवं वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त किए जाते है। इस सम्बन्ध में हुए प्रयोग स्पष्ट करते है कि जन्म के समय संवेग निश्चित रूप से विद्यमान नही होते है। बाद में धीरे–धीरे बच्चा ऐसी निश्चित प्रतिक्रियाएँ करता है जिससे ज्ञात होता है कि उसे सुखद व दुखद अनुभूति हो रही है।

7.4 संवेगो की विशेषताएँ

1. संवेगात्मक अनुभव किसी मूल प्रवृति या जैविकीय उत्तेजना से जुड़े होते है।
2. सामान्यतः संवेग प्रत्यक्षीकरण का उत्पाद होते हैं।
3. प्रत्येक संवेगात्मक अनुभव के दौरान प्राणी में अनेक शारीरिक परिवर्तन होते है।
4. संवेग किसी स्थूल वस्तु या परिस्थिति के प्रति अभिव्यक्त किए जाते है।
5. प्रत्येक जीवित प्राणी में संवेग होते है।
6. विकास के सभी स्तरों में संवेग होते है और बच्चे व बूड़ो में उत्पन्न किए जा सकते है
7. एक ही संवेग को अनेक प्रकार के उतेजनाओं (वस्तुओं या परिस्थितियों) से उत्पन्न किया जा सकता है
8. संवेग शीघ्रता से उत्पन्न होते है और धीरे–धीरे समाप्त होते है।

7.5 बच्चों के संवेगों की विशेषताएँ

1. बच्चों के संवेग थोड़े समय के लिए होते है बच्चे अपने संवेगो की अभिव्यक्ति बाहरी व्यवहार द्वारा तुरन्त कर देते है जब कि बड़े होने पर बाहरी व्यवहार पर सामाजिक नियन्त्रण होता है।
2. बच्चों के संवेग तीव्र होते है। बच्चे डर, क्रोध व खुशी आदि की अभिव्यक्ति अत्यधिक तीव्रता से करते है।
3. बच्चों के संवेग अस्थिर होते है। बच्चों के संवेगो में शीघ्रता से बदलाव होता है उदाहरणार्थ अभी लड़ाई और थोड़ी ही देर में तुरन्त दोस्ती कर लेते है।
4. बच्चों के संवेग बार–बार दिखायी देते है क्योकि वे अपने संवेगों को छिपाने

में असमर्थ होते है। बच्चे दिन में अनेक बार गुस्सा करते है या खुश होते है।

5. बच्चों की संवेगात्मक प्रतिक्रिया में भिन्नता पायी जाती है एक ही संवेग की अवस्था में प्रत्येक बच्चा अलग–अलग प्रतिक्रिया देता है– उदाहरणार्थ :– अजनबी के सामने एक बच्चा भाग जाएगा व दूसरा रोने लगेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी:– क. अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए। लिखिए।

ख. इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरो से अपने उत्तर मिलाइए।

1. संवेग से क्या समझते है?

....

....

....

2. बालकों में पाये जाने वाले संवेगो की प्रमुख विशेषताए बताइए।

....

....

....

7.6 बच्चों के सामान्य संवेगात्मक ढ़ंग

7.6.1 डर –

प्रथम वर्ष के अन्त के पहले ही डर से सम्बन्धित उत्तेजनाऍ बच्चे पर प्रभाव डालने लगती है। समय के साथ–साथ उन वस्तुओं की संख्या बढती जाती है जो बच्चे को डराती है। मानसिक विकास के साथ–साथ वह इस योग्य होता है कि उन वस्तुओं और व्यक्तियों को पहचान सके जो उसे डराती हैं। डर चाहे तार्किक हो या अतार्किक इसकी जड़ बच्चों के अनुभवों में होती है। छोटा बच्चा सामान्यतः जोर की आवाज, अजनबी – लोग, –जगह, –वस्तुएँ, अंधेरी जगह व अकेले रहने से डरते है। यह डर अवस्था के साथ–साथ कम हो जाता है। डर के प्रति बच्चे की प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी शारीरिक व मानसिक दशा क्या है। यदि बच्चा थका हुआ है तो ऐसी स्थितिया डर को और

बढ़ाती है। Boston ने अपने अध्ययनों में पाया कि बुद्धिमान बच्चे डर अधिक प्रदर्शित करते है क्योंकि वे खतरे की सम्भावनाओं को समझते है। डर तब उपयोगी होता है जब यह खतरे से सावधान करता है।

7.6.2 क्रोध –

यह संवेगात्मक प्रतिक्रिया बच्चे ज्यादा करते है क्योंकि वातावरण में क्रोध दिलाने वाले उत्तेजक डर की अपेक्षा अधिक होते है। अधिकतर बच्चे शीघ्र ही यह समझ जाते है कि क्रोध ध्यान आकृष्ड करने का अच्छा तरीका है। इससे उनकी इच्छा की पूर्ति होती है।

छोटे बच्चे को आराम न मिलने पर क्रोध आता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है तो वह स्वयं काम करना चाहता है और कार्य न कर पाने पर गुस्सा दिखाता है। विद्यालय जाने से पूर्व की आयु के बच्चे उन पर गुस्सा करते है जो उनके खेल की चीजो को छूते है व उनके खेलने में बाधा उत्पन्न करते है। उत्तर बाल्यावस्था में बच्चे की मजाक उड़ाने, उनकी गलती निकालने व दूसरे बच्चो से तुलना करने पर उनके गुस्सा आता है। क्रोध को अभिव्यक्त करने का ढ़ंग वातावरण से सीखा जाता है।

7.6.3 ईर्ष्या –

ईर्ष्या बच्चे तब दिखाते है जब प्यार की कभी के लिए वास्तव में कोई स्थिति जिम्मेदार होती है या बच्चा प्यार की कमी महसूस करता है। ईर्ष्या इस बात पर निर्भर करती है कि दूसरे उससे कैसा व्यवहार करते है व बच्चे को कैसा प्रशिक्षण मिला है। कभी–कभी माता–पिता दूसरो की प्रशंसा अत्याधिक करते है उस प्रकार वे अपने बच्चों में प्रतिद्वन्दिता व स्पर्धा उत्पन्न करते है। ईर्ष्या की स्थिति में बच्चे विभिन्न प्रतिक्रिया देते है।

1. **गुस्सा करनाः–** यह दो प्रकार से प्रकट किया जाता है–

(अ) प्रत्यक्ष रूप से जिससे ईर्ष्या होती है उसके रास्ते में मिल जाने पर उस पर प्रहार करना

(ब) अप्रत्यक्ष रूप से जिससे ईर्ष्या होती है उसकी अनुपस्थिति में उसके बस्ते से उसकी कापी या किताब चुराना लेना।

2. **आत्मीकरण करनाः–** जिससे ईर्ष्या होती है उससे बच्चा आत्मीकरण कर लेते है।

3. अधिक प्यार मिलने वाले से स्वयं को अलग करना

4. **दमनः–** बच्चा अपनी भावनाओं को यह कहते हुए दबा देता है कि मैं परवाह नही करता

5. **मार्गान्तीकरण–** यदि बच्चा पढने में तेज बच्चे से ईर्ष्या करता है तो वह खेल में स्वयं को आगे कर लेता है।

7.6.4 हर्ष, सन्तोष एवं सुख–

ये तीनो सुखद संवेग है। इनमें मात्रा का अन्तर है। ये निश्चयात्मक संवेग है। क्योकि व्यक्ति उस परिस्थिति को स्वीकार करता है जो इस संवेग को उत्पन्न करती है। छोटे बच्चों में ये संवेग शारीरिक कष्ट न होने पर देखा जाता है। बडे बच्चों को सन्तोष व हर्ष तब होता है जब उन्हे सफलता मिलती है, दूसरें से प्रशंसा मिलती है व दूसरो से उच्चता या श्रेष्ठता का अनुभव होता है।

7.6.5 स्नेह –

स्नेह बच्चे किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति दिखाते है। छोटे बच्चे उनके प्रति स्नेह दिखाते है जो उनकी आवश्यमताओं की परवाह करते है, उनसे खेलते है, सामान्यतः जो उन्हे हर्ष एवं सन्तोष प्रदान करते है। परिवार के सदस्यों एवं ऐसे लोग जिनसे खून का सम्बन्ध नही है, बच्चा स्नेह दिखाएगा या नही यह इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चे के प्रति इन लोगो का व्यवहार कैसा है।

7.6.6 उत्सुकता या कौतुहल –

छः से सात महीने के बाद बच्चे नई चीजों को पकड़ना चाहते है। पकड़ने के बाद सब तरफ से देखकर, छूकर, पटककर, हिलाडुला कर, मुहँ में डालकर विभिन्न ऐन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करते है। जैसे ही बच्चे बोलना सीखते है वे अपने कौतुहल को प्रश्न पूछकर कौतुहल को शान्त करते है आठ से नौ वर्ष के बच्चे इसी इच्छा के कारण अपना अधिक समय पढ़ने में लगाते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. बच्चों में सामान्यतः कौन–कौन से संवेग पाये जाते है ?

....

....

....

4. सामान्यतः ईर्ष्या संवेग में बच्चें किस तरह की प्रतिक्रियायें प्रकट करते है ?

....

....

....

7.7 किशोर के सामन्य संवेगात्मक ढंग

7.7.1 डर –

किशोर सामाजिक परिस्थितियों, अपरिचित व्यक्तियों एवं नई स्थिति में जाने से डरते है। डर की अभिव्यक्ति में लिंग भेद पाया जाता है । क्योकि लड़के व लड़कियों के मूल्यों में अन्तर होता है। लड़किया व्यक्तिगत सुरक्षा को विशेष महत्व देती है इसलिए अपरिचित के सामने डरती है जबकि लड़कों में ऐसा नही पाया जाता। डर पर सामाजिक – आर्थिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है।

7.7.2 चिन्ता –

चिन्ता डर से उत्पन्न होती है। ये काल्पनिक कारणों से होती है। इसमें वास्तविकता का अंश भी होता है लेकिन ये अनावश्यक रूप से बड़ी छुपी अवस्था है अर्थात् परेशानी अभी है नही, लेकिन आ सकती है इस बात की चिन्ता होती हैं। चिन्ता किसी वस्तु, व्यक्ति एवं स्थिति से सम्बन्धित हो सकती है। जैसे परीक्षा में अच्छे नम्बर आयेगें या नही, नौकरी मिलेगी या नही या फिर दूसरों के सामने बोलने से डरते है। लड़के व लडकियों के मूल्यों में अन्तर अलग–अलग होते है। जैसे लड़के नौकरी व व्यवसाय को लेकर चिन्तित होते है जबकि लड़कियां बाहय आकृति एवं सामाजिक मान्यता को लेकर अधिक चिन्तित रहती है।

7.7.3 दुश्चिन्ता –

दुश्चिन्ता आन्तरिक द्वन्द्व के कारण उत्पन्न होती है। यह लगातार रहने वाली कष्टकारी मानसिक दशा है। व्यक्ति बेचैनी का अनुभव करता है। उसे यह

स्पष्ट नही होता है कि वह क्या करे और क्या न करें। जब अनेक चिन्ताएं एकत्रित होती है तो वह दुश्चिन्ता का रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के लिए यदि किशोर ऐसे सांस्कृतिक समूह में रहता है जहां वाह्य आकृति, प्रसिद्धि, अध्ययन व सम्प्राप्ति को महत्व दिया जाता है और किशोर स्वयं को इन सांस्कृतिक आशाओं के अनुरूप नही पाता तो दुश्चिन्ता हो जाती है।

7.7.4 क्रोध –

किशोरो को पक्षपातपूर्ण व्यवहार से गुस्सा आता है। यह पक्षपातपूर्ण व्यवहार घर पर भी हो सकता है। यदि कोई उन पर रोब जमाता है तो गुस्सा आता हैं। भाई बहनों द्वारा एक दूसरे का सामान प्रयोग करने पर, व्यंग्यात्मक बातों का प्रयोग करने पर, आदतों मे बाधा होने पर, योजना को सफलतापूर्वक सम्पन्न न करने पर क्रोध आता है। क्रोध की अभिव्यक्ति में किशोर चीजों को तोड़ते, फेंकते है, तेज बोलते है। कभी कभी बोलना बन्द कर देते है।

7.7.5 ईर्ष्या –

इसमें दो संवेग शामिल होते है। सामाजिक स्तर खोने का डर और क्रोधा। किशोरावस्था में ईर्ष्या भाई बहनों के प्रति कम और संगी साथियों के प्रति ज्यादा होती है। जितना अधिक किशोर सामाजिक स्थितियों में असुरक्षा का अनुभव करेगा उतना अधिक उन लोगों से ईर्ष्या करेगा जिनकों सामाजिक मान्यता प्राप्त है। असन्तुष्ट बच्चा ईर्ष्या का शिकार होता है। इस संवेग की अनुभूति पर मौखिक अभिव्यक्ति होती है। जैसे मजाक उड़ाना या व्यंग्य करना।

7.7.6. जलन की भावना –

जलन की भावना व्यक्ति की चीजों के प्रति होती है जैसे कोई अमीर घर का लड़का कार में आता है, अच्छे कपड़े पहनता है, अच्छे खिलौने रखता है। तो गरीब घर के लड़के को उसकी इन सुविधाओं से जलन होती है।

7.7.7 नाराज होना –

यह गुस्से से कम तीव्र संवेग है। किशोर गुस्से की तुलना में नाराज अधिक होते है। किशोर उन चीजों के बारे में बात करके सुख का अनुभव करते है। जो उसे नाराज करती है। किशोर दूसरें लोगों के भाषण, व्यवहार करने के तरीके से अधिक नाराज होते है। किशोर जब आशा के अनुरूप कार्य नही कर पाता, उसका समायोजन अच्छा नही होता वे नाराज होते है।

7.7.8 जिज्ञासा/उत्सुकता –

किशोर लिंग, वैज्ञानिक चीजों, संसार की घटनाओं, धर्म व नैतिकता में उत्सुकता दिखाते है और इन विषयों पर वे प्रश्न भी करते है। वे किताबें, पत्र पत्रिकाएं पढ़कर अपनी जिज्ञासा को शान्त करते है।

7.7.9 स्नेह –

यह व्यक्ति, वस्तु या जानवर के प्रति कोमल लगाव है। यह सुखद अनुभवों पर आधारित होता है। किशोरावस्था व बाल्यावस्था के इस संवेग में अन्तर होता है। किशोर स्नेह निर्जीव व जानवरों की तुलना में व्यक्तियों के प्रति अधिक करते है। किशोर के लिए स्नेह में भी तीव्रता होती है। लेकिन किशोर बच्चों की तरह केवल घर के लोगों से भी स्नेह नही करते वरन संग–साथी व बाहर के लोगों से भी करते है।

7.7.10 दु:ख –

इस संवेग की अनुभूति तब होती है जब व्यक्ति ऐसी चीज खो देता है जिसको वो बहुत महत्व देता है। तथा उससे उसे संवेगात्मक लगाव होता है। किशोर को इस संवेग का अनुभव बार–बार होता है क्योकि किशोर में अब सोचने समझने की शक्ति बढ़ जाती है। किशोर बच्चों की तरह रोते नही है वरन् अपने चारों तरफ के लोगों व चीजों में रूचि नही लेते है। एकान्त में रहते है। भूख कम लगती हैं व नींद कम आती है। इसका किशोर के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7.7.11 खुशी –

किशोर खुशी का अनुभव तब करता है जब उसका समायोजन अच्छा होता है। प्रशिक्षण व योग्यता से किशोर इस योग्य होता है कि वह परिस्थिति के साथ ठीक से समायोजन कर सके। अच्छा समायोजन व्यक्ति को आत्म सन्तोष देता है। यदि किशोर समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कार्यो को सफलतापूर्वक करता है तो उसमें उच्चता की भावना आती है उससे भी उसे सन्तोष मिलता है। अन्ततः वह खुशी का अनुभव करता है।

7.8 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. परिपक्वता – व्यक्ति के विकास पर संवेगात्मक विकास निर्भर करता है विशेष रूप से स्नायु तन्त्र के विकास पर। यदि Frontal Lobe को हटा

दिया जाए तो संवेगों में स्थिरता नही रहती है।

2. स्वास्थ्य और शारीरिक विकास – बच्चे के स्वास्थ्य, शारीरिक विकास एवं संवेगात्मक विकास में धनात्मक सहसम्बन्ध होता है। स्वास्थ्य में गिरावट से संवेगात्मक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3. बुद्धि – Hurlock ने अध्ययनों में पाया कि सामान्य व कम बुद्धि के लोगों में अपने संवेगों पर नियन्त्रण कम होता है। चूंकि बुद्धिमान व्यक्ति के पास चिन्तन व तर्क की योग्यता होती है इसलिए संवेगों पर नियन्त्रण कर लेते है।

4. सीखना – व्यक्ति समाज व संस्कृति द्वारा मान्य ढंग से संवेगों को व्यक्त करना सीखता है। उदाहरण के लिए नीग्रों के डर को व्यक्त करने का तरीका भारतीयों से भिन्न प्रकार का होता है। बच्चे संवेगात्मक व्यवहार को दो प्रकार से सीखते है –

   (अ) अनुबन्धन द्वारा – Watson ने Albert नामक बच्चे पर प्रयोग किया। यह बच्चा खरगोश से बहुत प्यार करता था और उसके साथ खेलता था। Watson ने इस बच्चे को खरगोश से डरना सिखाया। अतः जब कभी बच्चा खरगोश के साथ खेलता था तो वे जोर की आवाज (जो डरावनी थी) करते थे। इससे बच्चा डरने लगा। ध ीरे–धीरे बच्चा खरगोश से डरने लगा। बाद में वह सफेद फर वाली सभी चीजों से डरना सीख गया।

   (ब) अनुकरण – यदि माता–पिता चिन्तित रहते है तो बच्चे चिन्तित रहना सीख जाते है। इसी प्रकार माता–पिता शान्त तो बच्चे भी शान्त होते है। Turner ने पाया कि शिक्षकों के संवेगात्मक व्यवहार का प्रभाव छात्रों पर पड़ता है।

5. विद्यालयी वातावरण – शिक्षकों का अपने व्यवसाय एवं छात्रों के प्रति मनोवृत्ति, विद्यालय अनुशासन, विद्यालय में अकादमिक सुविधाए, भौतिक सुविधाए, शिक्षण विधि, पाठ्य सहगामी क्रियाएं आदि का बच्चे के संवेगात्मक विकास पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि विद्यालय में अत्यन्त कठोर अनुशासन होता है या अनुशासन विहीन विद्यालय दोनों का बच्चे के संवेगात्मक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. संगी–साथी – संवेगात्मक व्यवहार अनुकरण द्वारा सीखे जाते है। साथ ही कहावत है– संगत का असर पड़ता है। अतः बच्चों के संवेगात्मक

विकास पर मित्रों, संगी साथियों व सह पाठियों के व्यवहार का प्रभाव पड़ता है।

7. परिवारिक वातावरण – माता–पिता व बच्चे के मध्य सम्बन्ध, बच्चे का जन्म क्रम, लड़का व लड़की, परिवार का आकार, परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर, अनुशासन, माता–पिता का बच्चे के प्रति मनोवृत्ति, आदि बच्चे के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. किशोरों में कौन–कौन से संवेगात्मक व्यवहार पाये जाते है ?

....

....

....

6. संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन से है ?

....

....

....

7.9 संवेगात्मक विकास का शैक्षिक निहितार्थ

सभी सीखने की क्रियाओं क सम्बन्ध संवेगों से होता है। विद्यालय में दिया जाने वाला शिक्षण सफल नहीं होगा यदि छात्रों का बौद्धिक विकास तो हो रहा है लेकिन वे संवेगात्मक रूप से विचलित है। UNESCO रिपोर्ट (1955) के अनुसार – " Learning in the strict educational sense will not proceed satisfactorly if the child's emotional life is disturbed."

1. कक्षा में पढ़ाते समय शिक्षक को इस बात के लिए संवेदनशील होना चाहिए कि उनके प्रति छात्रों के कैसे संवेग हैं

2. प्रत्येक कक्षा में हम भावना (Feeling Tone) होती है। जिसके कारण छात्र कक्षा में सुरक्षित महसूस करते है। शिक्षक का प्रयास होना चाहिए कि यह भावना बनी रहे और छात्र कक्षा में किसी भी प्रकार का तनाव का अनुभव

न करें।

3. छात्रों के संवेगों व संवेगात्मक व्यवहार के प्रति शिक्षक का सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए।
4. स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को महत्व देना चाहिए।
5. परीक्षा में नम्बरों पर बहुत बल नही होना चाहिए।
6. सम्पूर्ण उपस्थिति के स्थान पर बच्चे के स्वास्थ्य पर बल देना चाहिए।
7. संवेगात्मक समस्याओ के समाधान हेतु निर्देशन का प्रबन्ध होना चाहिए।
8. छात्रों को सामाजिक मान्यता प्राप्त ढंग से संवेगात्मक व्यवहार करने का तरीका सिखाना चाहिए।
9. छात्रों के संवेगों को समझते समय शिक्षक का पक्षपात रहित व वस्तुनिष्ठ व्यवहार होना चाहिए।

7.10 सारांश

संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था है। मानव जीवन में संवेगों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। बालकों में संवेगों का विकास किस रूप में हुआ है। इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ संवेग जन्मजात होते है। जबकि बहुत से संवेगों का विकास वातावरण में धीरे–धीरे होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों में सभी प्रमुख संवेगों अर्थात् क्रोध, डर, उत्सुकता, हर्ष, स्नेह, दुःख आदि का विकास हो जाता है। किशोरावस्था तक आते–आते बालकों में वे सभी संवेग होते है जो कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में होते हैं। किन्तु इनका प्रकटीकरण बाल्यावस्था से भिन्न होता है।

परिपक्वता, शारीरिक विकास, बुद्धि, वातावरण आदि कारक व्यक्ति के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते है। संवेगात्मक विकास किस रूप में होता है यह पूर्वानुमेय है। विभिन्न संवेगों का प्रकटीकरण आयु के अनुसार बढ़ता जाता है। इन संवेगों का ज्ञान एक अध्यापक को होना चाहिये। इनका अपना शैक्षिक निहितार्थ है।

7.11 अभ्यास कार्य

1. बाल्यावस्था में पाये जाने वाले संवेगों का शैक्षिक निहितार्थ लिखिए।
2. विभिन्न आयु में प्रकट होने वाले संवेगों का चार्ट बनाइए।
3. बालकों व किशोरों में पाये जाने वाले संवेगों में अन्तर लिखिए।
4. व्यक्ति में संवेग जन्मजात पाये जाते है या अर्जित होते है। विवेचना कीजिए।

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था होती है। जिसमें विभिन्न तरह के शारीरिक व ग्रंथीय परिवर्तन होते है।
2. संवेग किसी न किसी मूल प्रवृत्ति से जुड़े होते है।
   - अस्थायी होते है।
   - संवेग की तीव्रतर मात्रा
   - संवेगों की पुनरावृत्ति
   - संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में विभिन्नता
3. क्रोध, ईष्या, हर्ष, संतोष, स्नेह, उत्सुकता आदि संवेग पाये जाते है।
4. बच्चे प्रायः गुस्सा करके अपने संवेग का प्रकटीकरण करते है। कभी–कभी बच्चे अपने इस भाव को दवा लेते है। जिससे इन भावनाओं का प्रकटन नहीं हो पाता। तादात्मीकरण या मार्गान्तरण के माध्यम से भी ईष्या संवेग को बच्चे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से प्रकट करते है।
5. किशोरों में डर, चिन्ता, दुश्चिन्ता आदि संवेगात्मक व्यवहार दिखायी पड़ते है। थोड़ी सी बात में क्रोध व नाराज होने जैसे भाव इनके व्यवहार में दिखायी पड़ते है। दुःख का भाव प्रकट करने के साथ ही उनमें स्नेह की कोमल भावनायें भी होती है।
6. 1.) शारीरिक कारक
   2.) मानसिक कारक
   3.) वातावरणीय कारक

7.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chauhan, S.S. (1996) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

Hurlock, E.B. (1981) Developmental Psychology : A life span approach fifth edition. Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

Hurlock, E.B. (1997) Child Development : Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई 8 सामाजिक विकास

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 सामाजिक विकास का अर्थ

8.4 सामाजिक प्रौढ़ता तथा अप्रौढ़ता

8.5 शैशावस्था में सामाजिक विकास

8.6 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

8.7 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

8.8 वयस्क अवस्था

8.9 सामाजिक विकास के मूल आधार

8.10 सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां

8.11 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

8.12 सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्व

8.13 सारांश

8.14 अभ्यास कार्य

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में रहकर समाज के अनुकूल व्यवहार करना होता है अतः प्रत्येक बालक के लिये शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास का भी अत्यन्त महत्व है। एक शिक्षक के लिये सामाजिक विकास तथा सामाजीकरण की प्रक्रिया से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि बालक अपने माता–पिता तथा परिवार के सम्पर्क में आने के पश्चात् विद्यालय तथा शिक्षक के सम्पर्क में आकर समाज के अनुकूल व्यवहार करना सीखता है।

इस इकाई में सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक किस प्रकार व्यवहार करना सीखता है, किस प्रकार बालक एक सामाजिक प्रौढ़ बनता

है आदि के विषय में जानकारी दी जायेगी। साथ ही उन कारकों का वर्णन भी किया गया है जो बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करते है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

- सामाजिक विकास को परिभाषित कर सकेगे।
- सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
- सामाजिक रूप से प्रौढ़ तथा अप्रौढ़ व्यक्ति में अन्तर कर सकेगे।
- उन कारकों की पहचान कर सकेगे जो बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करते है।
- सामाजिक विकास में शिक्षक की भूमिका का वर्णन कर सकेगे।
- सामाजीकरण की प्रक्रिया से परिचित हो सकेगे।
- सामाजीकरण के प्रमुख साधनों की व्याख्या कर सकेगे।
- समाजीकरण की विभिन्न प्रविधियों से अवगत हो सकेगे।

8.3 सामाजिक विकास का अर्थ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह दूसरो के व्यवहार को प्रभावित करता है और उसके व्यवहार से प्रभावित होता है। इस परस्पर व्यवहार के व्यवस्थापन पर ही सामाजिक संबंध निर्भर होते हैं। इस परस्पर व्यवहार में रूचियों, अभिवृत्तियों, आदतों आदि का बड़ा महत्व है। सामाजिक विकास में इन सभी का विकास सम्मिलित है। जब सामाजिक परिस्थिति इस प्रकार की होती है कि शिशु समाज केदृ नियमों तथा नैतिक मानक को आसानी से सीख लेता है तो यह कहा जाता है कि उसमें सामाजिक विकास हुआ है।

सोरेन्सन ने सामाजिक विकास को परिभाषित करते हुये लिखा है – "सामाजिक वृद्धि और विकास से तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।"

हरलाक (1978) के अनुसार – "सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता हैं।"

इस प्रकार सामाजिक विकास में लगातार दूसरों के साथ अनुकूलन करने

की योग्यता में वृद्धि पर जोर दिया जाता है। मनुष्य की सामाजिक परिस्थितियां बदलती रहती है। इस परिवर्तन के साथ व्यक्ति को बराबर बदलना होता है।

8.4 सामाजिक प्रौढ़ता तथा अप्रौढ़ता

सामाजिक विकास के अर्थ को भली प्रकार समझने में सामाजिक प्रौढ़ता अथवा सामाजिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों को समझने में सहायता मिलेगी। एक सामाजिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति दूसरों से सहयोग करता है और उनका विरोध बहुत कम करता है। वह कभी भी अशिष्ट नही होता बल्कि सदैव दूसरे व्यक्तियों के प्रति शिष्ट, दयालु और मैत्रीपूर्ण रहता हैं। इसलिए उनके मित्रों की संख्या भी बहुत अधिक होती है। सामाजिक दृष्टि से प्रौढ़ व्यक्ति कला, अध्ययन, खेल आदि में अच्छी रूचि का परिचय देता है। वह अच्छे–अच्छे लेखकों की रचनाएं पढ़ता है और अपनी आयु के उपयुक्त खेलों और मनोरंजन में भाग लेता है।

सामाजिक रूप से प्रौढ़ व्यक्ति के विरूद्ध सामाजिक दृष्टि से अप्रौढ़ अथवा अविकसित व्यक्ति समूह में झेंपता और शर्माता है। वह दूसरों की उपस्थिति में बेचैनी महसूस करता है। वह अपनी माता की राय पर अत्यधिक निर्भर होता है और उसके साथ लगा रहता है। उसके मित्रों की संख्या बहुत कम होती है और उसे दूसरों से मिलने जुलने में कठिनाई होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः– क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

1. सामाजिक विकास से क्या तात्पर्य है?

   ....

   ....

   ....

2. सामाजिक रूप से प्रौढ़ व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन–कौन सी विशेषताएं परिलक्षित होती है?

   ....

   ....

   ....

8.5 शैशवस्था में सामाजिक विकास

यद्यपि जन्म के समय शिशु सामाजिक नही होता है परन्तु दूसरे व्यक्तियों के प्रथम सम्पर्क से ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, जो निरन्तर आजीवन चलती रहती है। सामाजिक विकास निम्नांकित ढंग से होता है–

(क) प्रथम माह – प्रथम माह मे शिशु किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नही करता हैं वह तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। वह रोने तथा नेत्रों को घुमाने की प्रतिक्रियायें करता है।

(ख) द्वितीय माह – दूसरे माह में शिशु आवाजों को पहचानने लगता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बातें करता है या ताली बजाता है या खिलौना दिखाता है तो वह सिर घुमाता है तथा दूसरों को देखकर मुस्कराता है।

(ग) तृतीय माह – तीसरे माह में शिशु माँ को पहचानने लगता है। जब कोई व्यक्ति शिशु से बातें करता है या ताली बजाता है तो वह रोते–रोते चुप हो जाता है।

(घ) चतुर्थ माह – चौथे माह में शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देखकर हँसता है, मुस्कराता है। जब कोई व्यक्ति उसके साथ खेलता है तो वह हँसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है।

(ङ) पंचम माह – पाँचवे माह में शिशु प्रेम व क्रोध के व्यवहार में अंतर समझने लगता है। दूसरे व्यक्ति के हँसने पर वह भी हँसता है तथा डाँटने पर सहम जाता है।

(च) षष्टम माह – छठे माह में शिशु परिचित–अपरिचित में अंतर करने लगता है। वह अपरिचितों से डरता है। बड़ों के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है। वह बड़ों के बाल, कपड़े, चश्मा आदि खींचने लगता है।

(छ) नवम् माह – नवे माह में शिशु दूसरों के शब्दों, हावभाव तथा कार्यों का अनुकरण करने का प्रयास करने लगता है।

(ज) प्रथम वर्ष – एक वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों से हिल–मिल जाता है। बड़ों के मना करने पर मान जाता है तथा अपरिचितों के प्रति भय तथा नापसन्दगी दर्शाता है।

(झ) द्वितीय वर्ष – दो वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों को उनके कार्यों में सहयोग देने लगता है। इस प्रकार वह परिवार का एक सक्रिय सदस्य बन जाता है।

(ञ) तृतीय वर्ष – तीन वर्ष की आयु में शिशु अन्य बालकों के साथ खेलने लगता है। खिलौनों के आदान प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा वह अन्य बालकों से सामाजिक संबन्ध बनाता है।

(य) चतुर्थ वर्ष – चौथे वर्ष के दौरान शिशु प्रायः नर्सरी विद्यालयों में जाने लगता है जहां वह नए–नए सामाजिक संबन्ध बनाता है तथा नए सामाजिक वातावरण में स्वयं को समायोजन करता है।

(र) पंचम वर्ष – पांचवे वर्ष में शिशु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है। वह जिस समूह का सदस्य होता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

(ल) षष्ठम वर्ष – छठे वर्ष में शिशु प्राथमिक विद्यालय में जाने लगता है जहां उसकी औपचारिक शिक्षा का आरम्भ हो जाता है तथा नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन करता है।

शैशावस्था में बालक के द्वारा किए जाने वाले उपरोक्त वर्णित सामाजिक व्यवहारों के अवलोकन से स्पष्ट है कि जन्म के उपरान्त धीरे–धीरे बालक का समाजीकरण होता है। जन्म के समय शिशु सामाजिक प्राणी नही होता है। परन्तु अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आने पर उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

8.6 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

बाल्यावस्था में समाजीकरण की गति तीव्र हो जाती है। बालक वाह्य वातावरण के सम्पर्क में आता है। जिसके फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास को निम्नांकित ढंग से व्यक्त किया जा सकता है।

1. बालक किसी न किसी टोली या समूह का सदस्य बन जाता है। यह टोली अथवा समूह ही उसके खेलो, वस्त्रों की पसंद तक्षा अन्य उचित–अनुचित बातों का निर्धारण करते है।

2. समूह के सदस्य के रूप में बालक के अंदर अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। उत्तरदायित्व, सहयोग, सहनशीलता, सद्भावना,

आत्मनियन्त्रण, न्यायप्रियता आदि सामाजिक गुण बालक में धीरे–धीरे उदित होने लगते है।

3. इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं की रूचियों में स्पष्ट अंतर दृष्टिगोचर होता है।

4. बाल्यावस्था में बालक प्रायः घर से बाहर रहना चाहता है, और उसका व्यवहार शिष्टतापूर्ण होता है।

5. इस अवस्था में बालक में सामाजिक स्वीकृति तथा प्रशंसा पाने की तीव्र इच्छा होती है।

6. प्यार तथा स्नेह से वंचित बालक इस आयु में प्रायः उद्धण्ड हो जाते है।

7. बाल्यावस्था में बालक मित्रों का चुनाव करते है। वे प्रायः कक्षा के सहपाठियों को अपना घनिष्ठ मित्र बनाते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस अवस्था में बालक के सामाजिक जीवन का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो जाता है जिसके फलस्वरूप बालक – बालिकाओं के समाजीकरण के अवसर तथा सम्भावनायें बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः– क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

3. बाल्यावस्था में बच्चों में किन–किन सामाजिक गुणों का विकास होता है?

....

....

....

4. शैशवावस्था में शिशु सामाजिक होता है विवेचना कीजिए?

....

....

....

8.7 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों का सामाजिक परिवेश अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों के साथ

–साथ उनके सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। किशोरावस्था में होने वाले अनुभवों तथा बदलते सामाजिक संबंधो के फलस्वरूप किशोर – किशोरियां नए ढंग के सामाजिक वातावरण में समायोजित करने का प्रयास करते है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप निम्नांकित होता है –

1. समूहों का निर्माण – किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियां अपने–अपने समूहों का निर्माण कर लेते है। परन्तु यह समूह बाल्यावस्था के समूहों की तरह अस्थायी नही होते है। इन समूहों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना होता है। पर्यटन, नृत्य, संगीत पिकनिक आदि के लिए समूहों का निर्माण किया जाता है। किशोर–किशोरियों के समूह प्रायः अलग–अलग होते है।

2. मैत्री भावना का विकास– किशोरावस्था में मैत्रीभाव विकसित हो जाता है। प्रारम्भ में किशोर–किशोरो से तथा किशोरियां–किशोरियों से मित्रता करती है। परन्तु उत्तर किशोरावस्था में किशोरियों की रूचि किशोरो से तथा किशोरों की रूचि किशोरियों से मित्रता करने की भी हो जाती है। वे अपनी सर्वोत्तम वेशभूषा, श्रृंगार व सजधज के साथ एक दूसरे के समक्ष उपस्थित होते है।

3. समूह के प्रति भक्ति– किशोरों में अपने समूह के प्रति अत्यधिक भक्तिभाव होता है। समूह के सभी सदस्यों के आचार–विचार, वेशभूषा, तौर–तरीके आदि लगभग एक ही जैसे होते है। किशोर अपने समूह के द्वारा स्वीकृत बातों को आदर्श मानता है तथा उनका अनुकरण करने का प्रयास करता है।

4. सामाजिक गुणों का विकास– समूह के सदस्य होने के कारण किशोर–किशोरियों में उत्साह, सहानुभूति, सहयोग, सद्भावना, नेतृत्व आदि सामाजिक गुणों का विकास होने लगता है। उनकी इच्छा समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की होती है, जिसके लिए वे विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास करते है।

5. सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास– किशोरावस्था में बालक–बालिकाओं में वयस्क व्यक्तियों की भांति व्यवहार करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। वे अपने कार्यो तथा व्यवहारों के द्वारा समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। स्वयं को सामाजिक दृष्टि से परिपक्व मान कर वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने का प्रयास करते है।

6. विद्रोह की भावना – किशोरावस्था में किशोर किशोरियों मे अपने माता–पिता तथा अन्य परिवारीजनों से संघर्ष अथवा मतभेद करने की प्रवृत्ति आ जाती है। यदि माता–पिता उनकी स्वतंत्रता का हनन करके उनके जीवन को अपने आदर्शो के अनुरूप ढ़ालने का प्रयत्न करते है अथवा उनके समक्ष नैतिक आदर्शो का उदाहरण देकर उनका अनुकरण करने पर बल देते है तो किशोर–किशोरियां विद्रोह कर देते है।

7. व्यवसाय चयन में रूचि – किशोरावस्था के दौरान किशोरों की व्यावसायिक रूचियां विकसित होने लगती है। वे अपने भावी व्यवसाय का चुनाव करने के लिये सदैव चिन्तित से रहते है। प्रायः किशोर अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अधिकार सम्पन्न व्यवसायों को अपनाना चाहते है।

8. बर्हिमुखी प्रवृत्ति – किशोरावस्था में बर्हिमुखी प्रवृत्ति का विकास होता है। किशोर–किशोरियों को अपने समूह के क्रियाकलापों तथा विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में भाग के अवसर मिलते है, जिसके फलस्वरूप उनमें बर्हिमुखी रूचियां विकसित होने लगती है।

8.8 वयस्क अवस्था

सामाजिक विकास की यह अवस्था वास्तव में किशोरावस्था का परिणाम मात्र है। इस अवस्था में द्वितीयक समाजीकरण, विसमाजीकरण तथा पुर्नसमाजीकरण की प्रक्रिया मन्द गति से जारी रहती है। इस अवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि यहां व्यक्ति वैवाहिक जीवन को निभाने में सक्रिय हो जाता है, जीविकोपार्जन भी इस अवस्था की मुख्य विशेषता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

5) किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप किस प्रकार का होता है ?

....

....

....

8.9 सामाजिक विकास के मूल आधार

बालक के सामाजिक विकास का प्रक्रम अर्जित ही होता है अतः इसका स्वरूप इस तथ्य पर आधारित है कि बालक की अन्य व्यक्तियों के प्रति कैसी अभिवृत्तियां है और स्वयं उसके इस संबन्ध के साथ अपने कैसे विशेष अनुभव है। आगे इसके अतिरिक्त उसे इस संबंध में विकास के कैसे अवसर मिले है। इस प्रकार एक बालक के सामाजिक विकास से संबन्धित विभिन्न मूल आधारों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है –

- बालक को दूसरों के साथ रहने व व्यवहार के पर्याप्त अवसर मिलते रहने चाहिए।
- एक बालक को अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी भावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति के रूचियों को भी समझना आवश्यक है।
- बालक को सामाजिक बनने के लिए प्रेरणा देना चाहिये।
- बालकों को मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।

8.10 बालक के सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां –

बालक के सामाजिक विकास के मूल्यांकन की प्रमुख कसौटियां प्रायः निम्नलिखित होती है –

1. सामाजिक अनुरूपता – एक बालक जितनी शीघ्रता व कुशलता से अपने समाज की परम्पराओं, नैतिक मूल्यों व आदर्शो के अनुरूप व्यवहार करना सीख लेता है। उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक उच्च होता है। स्पष्टतः यहां सामाजिक अनुरूपता व सामाजिक विकास में एक प्रकार का ध नात्मक सह–सम्बन्ध देखने में आता है।

2. सामाजिक समायोजन – एक बालक अपनी सामाजिक स्थितियों को जितनी अधिक सफलता व कुशलता से समझने व सुलझाने में सम्पन्न होता है, जितनी अधिक उसमें समायोजन की शक्ति होती है उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक होता है।

3. सामाजिक अन्तः क्रियाएं – एक बालक की सामाजिक अन्तः क्रियाओं का स्तर जितना अधिक विस्तृत व जटिल होता है, यह स्थिति भी लगभग उसी समानुपात में उसकी सामाजिक विकास के स्तर की द्योतक होती है।

4. सामाजिक सहभागिता – एक बालक अथवा व्यक्ति जितने अधिक सहज भाव और जितने अधिक आत्मविश्वास के साथ सामाजिक गतिविधियां में भाग लेता जाता है, वह भी प्रायः उसके उच्च सामाजिक विकास का ही सूचक होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

6) बालक के सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां कौन–कौन सी है ?

....

....

....

8.11 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

वातावरण और संगठित साधनों के कुछ ऐसे विशेष कारक हैं जिनका बालक के सामाजिक विकास की दशा पर निश्चित और विशिष्ट प्रभाव पड़ता है।

1. **परिवार के वातावरण का स्वरूप–** परिवार ही वह साधन है जहां बालक का सबसे पहले समाजीकरण होता है। जिस परिवार का वातावरण सामान्यतः पारस्परिक, सुखद और सुन्दर भावनाओं पर आधारित होता है व जिसमें बालकों के प्रति आवश्यक स्नेह व सहानुभूति बनी रहती है। तब ऐसे उत्साहपूर्ण व प्रेरक पारिवारिक परिवेश में बालक के व्यवहार में भी पारस्परिक आधार पर आदान–प्रदान की मधुर सामाजिक भावनाएं विकसित होती है।

2. **पास–पड़ोस के परिवेश का प्रभाव–** बच्चे का कुछ समय अपने पड़ोसियों के साथ गुजरता है। अतः पड़ोसियों के साथ पारस्परिक अन्तःक्रिया का प्रभाव उसके सामाजिक विकास पर पड़ता है।

3. **वंशानुक्रम –** मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ–साथ उसके सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है। अनेक सामाजिक गुण व्यक्ति को वंश परम्परा के रूप में अपने पूर्वजों से प्राप्त होते है।

4. शारीरिक तथा मानसिक विकास – शारीरिक तथा मानसिक विकास का व्यक्ति के सामाजिक विकास से घनिष्ठ संबन्ध होता है। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा विकसित मस्तिष्क वाले बालकों के समाजीकरण की सम्भावनायें अधिक होती है, जबकि अस्वस्थ तथा कम विकसित मस्तिष्क वाले बालकों के समाजीकरण की सम्भावना कम होती है। बीमार, अपंग, शारीरिक दृष्टि से अनाकर्षक, विकृत मस्तिष्क वाले, अल्प बुद्धि वाले बालक प्रायः सामाजिक अवहेलना तथा तिरस्कार सहते रहते है। जिसके फलस्वरूप उनमें हीनता की भावना विकसित हो जाती है तथा वे अन्य बालकों के साथ स्वयं को समायोजित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

5. संवेगात्मक विकास – सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार संवेगात्मक विकास होता है। संवेगात्मक तथा सामाजिक व्यवहार एक दूसरे के अनुयायी होते हैं। जिन बालकों में प्रेम, स्नेह, सहयोग, हास–परिहास के भाव अधिक होते हैं, वे सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं तथा स्नेह व आकर्षण का पात्र बन जाते हैं। इसके विपरीत जिन बालकों में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, नीरसता आदि भाव होते हैं, वे किसी को भी अच्छे नही लगते हैं, तथा ऐसे बालकों की सभी उपेक्षा करते हैं।

6. पालन–पोषण प्रणाली– बालकों में सामाजिक विकास उनके पालन–पोषण के ढंग द्वारा अधिक प्रभावित होता है। जिन बालकों के पालन पोषण में माता–पिता द्वारा उचित दुलार–प्यार दिया जाता है तथा बालकों की देख–रेख उनके द्वारा स्वयं की जाती है, उनमें सामाजिक नियमों को सीखने तथा उनके अनुरूप व्यवहार करने की तीव्र प्रेरणा होती है। अतः ऐसे बालकों का सामाजिक विकास अधिक तीव्र तथा संतोषजनक होती है।

7. सामाजिक वर्ग–भेद– सामाजिक आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज को मुख्य मुख्य रूप से तीन वर्गो अर्थात निम्न, मध्य तथा उच्च वर्ग में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक सामाजिक वर्ग के नियमों, मूल्यों, मानदण्डो, विश्वासों तथा लोकरीतियों में अंतर होता है, इस कारण भिन्न–भिन्न वर्गो के बच्चों के समाजीकरण में अंतर होता है।

8. समाज– समाज का भी बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सामाजिक व्यवस्था बालक के समाजीकरण को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। समाज के कार्य, आदर्श तथा प्रतिमान बालक के सामाजिक दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

9. विद्यालय – बालक के सामाजिक विकास में उसके विद्यालय की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितना कि उसके परिवार की। विद्यालय में बालक नियम, आत्म संयम, अनुशासन, नम्रता जैसे गुणों को लगभग सहज रूप से ही अधिगत कर लेता है। यदि विद्यालय का वातावरण जनतंत्रीय है, तो बालक का विकास अविराम गति से उत्तम रूप ग्रहण करता चला जाता है।

10. अध्यापक– बालकों के सामाजिक विकास पर उनके अध्यापकों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। छात्र अपने अध्यापक से उसी के समान व्यवहार करना सीखते हैं। यदि अध्यापक शांत, शिष्ट तथा सहयोगी होता हैं तो छात्रों में भी शिष्टता, धैर्य तथा सहकारिता के गुण विकसित हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि शिक्षक अशिष्ट, क्रोधी तथा असहयोगी हैं तो छात्र भी उसी के समान बन जाते हैं।

11. अभिजात समूह– बालक को सामाजिक विकास में उसके संगी–साथियों की मंडली की भी प्रभावशाली भूमिका रहती है। समान आयु के बच्चे एक अलग समूह का निर्माण कर लेते है, जो ऐच्छिक होता है। एक बालक की मित्र मंडली, जितनी बड़ी, विषम व जितनी अधिक विभिन्न अभिरूचियों व अभिवृत्तियों वाली होती है। उतना ही बालक का सामाजिक विकास का क्षेत्र तद्नुसार अधिक देखने में आता है।

12. संस्कृति – प्रत्येक संस्कृति के अपने कुछ प्रतिमान, परम्पराएँ मूल्य होते हैं जिन्हें सांस्कृतिक प्रतिमान अथवा प्रतिरूप कहते है। बच्चे अपनी संस्कृति के इन प्रतिरूपों को माता–पिता, शिक्षक आदि के माध्यम से सीख लेते है। इस सीखने में समाजीकरण के कई संरचन सहायक होते हैं, जिसमें प्रत्यक्ष निर्देशन, अनुकरण, निरीक्षण, प्रतिरूपण, प्रबलन आदि मुख्य हैं।

13. प्रचार के माध्यम– बालकों के सामाजिक विकास पर प्रचार के भिन्न–भिन्न माध्यमों जैसे रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, अखबार, मैंगजीन आदि का भी प्रभाव पड़ता है। इन माध्यमों द्वारा भिन्न–भिन्न सामाजिक पहलुओं पर अपने–अपने ढंग से जोर डाला जाता है। बालकों को इन माध्यमों से तरह–तरह की बातें बताई जाती हैं। इन बातों का वे तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं, जिससे उनमें सामाजिक सूझ भी विकसित हो जाती है, जो उन्हें विभिन्न तरह के सामाजिक व्यवहार सीखने में मदद करती है।

14. सामाजिक वंचन– जब बालक को अन्य साथियों एवं व्यक्तियों से मिलने जुलने का अवसर नही दिया जाता है तो इससे उनका सामाजिक विकास

पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा इस स्थिति को सामाजिक वंचन कहा जाता है। कई बार सामाजिक वंचन अधिक होने से बालकों में असामाजिकता का शीलगुण विकसित होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

7) बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक बताइयें?

....

....

....

8.12 सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्व

बालक के सामाजिक विकास में प्रत्येक अवस्था में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक विकास करना है। इसलिए शिक्षा को सविचार व सप्रयोजन क्रिया कहा गया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन और परिमार्जन होता रहता है, जिससे वह आने वाली परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। मानसिक विकास का भी सामाजिक विकास से सम्बन्ध होता है। सामाजिक विकास पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है।

(1) वृद्धि का प्रभाव – बालक जैसे–जैसे बढ़ता है वैसे–वैसे वह सामाजिक बनता जाता है। इस ओर आरम्भ से ही ध्यान देना आवश्यक है।

(2) लिंग भेद का प्रभाव – बालक और बालिका के सामाजिक व्यवहार में भिन्नता पाई जाती है। अतः दोनों को भिन्न–भिन्न उपयुक्त सामाजिक व शैक्षिक वातावरण मिलना चाहिए।

(3) सीखने का प्रभाव– बालक समाज में रहकर ही अनुभव प्राप्त करता है और सीखता है और सीखकर शिक्षा प्राप्त करके ही सामाजिक व्यक्ति बनता है।

(4) सांस्कृतिक और आर्थिक दशा का प्रभाव– बालक के सामाजिक व्यवहार पर उसके सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है इसी प्रकार परिवार की आर्थिक स्थिति उसके सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

(5) भाषा का प्रभाव– सामाजिक जीवन पर भाषा का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। भाषा के माध्यम से विचारों का आदान प्रदान होता है और इसी के द्वारा हमें शिष्ट और सभ्य समझा जाता है।

बालकों के सामाजिक विकास को विकसित करने में शिक्षक की भूमिका

बालकों के सामाजिक विकास में शिक्षक का काफी महत्वपूर्ण योगदान होता है। स्कूली अवस्था में बालकों का सम्पर्क शिक्षकों से सीधा होता है। अतः शिक्षकगण बालक के सामाजिक विकास को सीधे प्रभावित करते हैं। बालकों के सामाजिक विकास को सही दिशा में विकसित करने में शिक्षक तथा स्कूल की महत्वपूर्ण भूमिका है –

(1) यदि स्कूल में शिक्षक एक ऐसा सामाजिक वातावरण बनाकर रखते हैं, जिससे कि बालकों में अनुशासन एवं आज्ञापालिता का भाव विकसित होता है, तो उससे बालकों में सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है।

(2) बालकों का सामाजिक विकास करने के लिए स्कूल में पर्याप्त मात्रा में पाठ्येत्तर कार्यक्रमों जैसे नाटय, राष्ट्रीय सामाजिक सेवा, खेलकूद, वाद–विवाद प्रतियोगिता आदि का संचालन होना चाहिए।

(3) शिक्षकों को अध्यापन कार्य में प्रजातंत्रात्मक साधनों का सहारा अधिक लेना चाहिए तथा दण्डात्मक साधनों का प्रयोग न के बराबर करना चाहिए।

(4) शिक्षकों को बालकों में सामाजिक उत्तरदायित्व उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से अवगत कराना चाहिए।

(5) स्कूल में शिक्षक अभिभावक सभा समय–समय पर आयोजित की जानी चाहिए।

(6) शिक्षक बालकों के सामाजिक विकास करने के लिए कुछ खास–खास विषयों जैसे सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र के अध्ययन पर अधि ाक जोर डालकर, बालकों को विभिन्न तरह की सामाजिक समस्याओं से अवगत करा सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

8) सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्व लिखिए।

....

....

....

8.13 सारांश

हमें यह आशा है कि आपको इस इकाई में सामाजिक विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं को पढ़ने में आनन्द आया होगा। आपने इस इकाई में पढ़ा कि सामाजिक विकास भी बालक के विकास का एक प्रमुख घटक है। सामाजिक विकास को शैक्षिक दृष्टिकोण से भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता है।

विभिन्न अवस्थाओं जैसे– शैशवावस्था, बाल्वावस्था, किशोरावस्था, व्यस्कावस्था में बालक के सामाजिक विकास किस रूप में होता है का भी उल्लेख किया गया है।

सामाजिक विकास के मूल आधार के लिए बालकों को दूसरों के साथ रहने व व्यवहार करने के पर्याप्त अवसर मिलते रहने चाहिए। उन्हें दूसरे व्यक्तियों के साथ भावाभिव्यक्ति के साथ–साथ उनकी रूचियों को भी समझना चाहिए। साथ ही बालक को सामाजिक बनने की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन भी प्रदान करना चाहिए।

सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियों के रूप में सामाजिक अनुरूपता, सामाजिक समायोजन, सामाजिक अन्तः क्रियाएं, सामाजिक सहभागिता, सामाजिक परिपक्वता आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

बालकों के सामाजिक विकास में शिक्षकों की भूमिका काफी अधिक है क्योंकि शिक्षकगण बालक के सामाजिक विकास को सीधे प्रभावित करते हैं।

8.14 अभ्यास कार्य

1. अपने आस–पास के विभिन्न अवस्थाओं के बालकों में पाये जाने वाले सामाजिक व्यवहार के लक्षणों की सूची बनाइये।
2. सामाजिक विकास में एक शिक्षक की भूमिका का मूल्यांकन करें।

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समाज के नियमों, मान्यताओं को सीखते हुए सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध व्यवहार करना।
2. सामाजिक रूप से परिपक्व व्यवहार करते हुए ऐसे व्यक्ति अपने विचारों को प्रकट करने में सक्षम होते हैं। साथ ही अपनी रूचियों, भावनाओं को स्वस्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं।
3. – समूह भावना का विकास
   – अनेक सामाजिक गुणों का विकास
   – लिंगानुसार रूचियों का विकास
   – सामाजिक अनुमोदन पाने की इच्छा
4. जन्म के बाद से लेकर शैशवावस्था तक बच्चे के द्वारा जो व्यवहार प्रकट किया जाता है, उन लक्षणों को आधार बनाकर सामाजिक विकास को लिखें।
5. किशोरावस्था में बालक सामाजिक विकास के रूप में समूहों का निर्माण करता है, उसमें मैत्री भावना का विकास होता है। साथ ही समूह के प्रति भक्ति, सामाजिक गुणों का विकास, सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास विद्रोह की भावना, व्यवसाय चयन में रूचि, राजनैतिक दलों का प्रभाव तथा बर्हिमुखी प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है।
6. बालक के सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां निम्न है :
   1. सामाजिक अनुरूपता
   2. सामाजिक समायोजन
   3. सामाजिक अन्तः क्रियाएँ
   4. सामाजिक सहभागिता

7. बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक है–

- परिवार के वातावरण
- पास पड़ोस के परिवेश का प्रभाव
- वंशानुक्रम
- शारीरिक तथा मानसिक विकास
- संवेगात्मक विकास
- पालन–पोषण प्रणाली
- सामाजिक वर्ग–भेद
- समाज
- विद्यालय
- अध्यापक
- खेलकूद
- अभिजात समूह
- संस्कृति
- भाषा–योग्यता
- प्रचार के माध्यम
- सामाजिक वंचन

8. बालक के सामाजिक विकास में शिक्षक की भूमिका निम्न है–

- अनुशासन आज्ञापालिता का भाव विकसित करने के लिये वातावरण निर्मित करना।
- स्कूल में पर्याप्त मात्रा में पाठ्येत्तर कार्यक्रमों का आयोजन करना।
- बालकों में सामाजिक उत्तरदायित्व विकसित करने की भावना का प्रयास करना।
- अभिभावकों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करना।
- सामाजिक विकास करने सम्बन्धी विषयों जैसे सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र के अध्ययन पर जोर देना।

8.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- सिंह, ए0के0 (1994) : शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पटना।
- सिन्हा, एच0एस0, शर्मा, रचना (2002) : शिक्षा मनोविज्ञान, एंटलाटिक पब्लिशर्श एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, डी0एन0 (2001) : आधुनिक समाज मनोविज्ञान, भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- सुलेमान, मुहम्मद (2002) : उच्चतम शिक्षा मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।